UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186059

UNIVERSAL
LIBRARY

प्रकाशक:-
सर्वोदय – मण्डल,
मँगरोठ (हमीरपुर)

प्राप्ति-स्थान:—
१-सर्वोदय मण्डल,
मंगरोठ (हमीरपुर)
२-बादल-बन्धु निर्माण-मन्दिर,
राठ (हमीरपुर)

— लेखक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित —

Checked 1964

मूल्य—दो रुपया.
प्रथम बार १६५४

मुद्रक:—
दुर्गाप्रसाद सिद्ध,
स्वाधीन प्रेस, झांसी.

दो शब्द !

'मङ्गल-प्रभात' मेरी 'शिशु' (१९३९ ई० में प्रकाशित) के बाद की मौलिक-स्फुट-रचनाओं का संकलन है। इसकी रचनाएं पांच परिच्छित्तियों में विभाजित हैं। कवि के लिये गायन से रुदन कम प्रिय नहीं है। अतएव अपने रुदनों के लिये 'शारद-घन' परिच्छित्ति की सृष्टि की गई है। समस्त रचनायें प्रायः कालक्रमेण नहीं—परिच्छित्तियों के अनुरूप ही सङ्कलित हैं।

व्यास-पीठ से लिखी जाने के कारण कुछ रचनाओं में मेरी मान्यतायें ध्वनित न होकर अभिहित हो गई हैं, जिनके लिये मैं सापराध हूं और दण्डित होने को प्रस्तुत भी।

'कवि के बयालीसवें में' तथा 'रे कैसा संसार' जीवन के उन क्षणों की रचनायें हैं—जिन्होंने मुझे सात-आठ मास के लिये गुडाकेश (निद्राजित) बना दिया था और अब—जिनकी स्मृति मुझे बड़ी मधुर प्रतीत होती है। शेष सभी रचनायें—वे जैसी भली बुरी बन पड़ी हैं—पाठकों के समक्ष हैं।

श्रद्धेय चतुर्वेदी जी ने पुस्तक की भूमिका लिखकर अपना ही काम किया है। वे मेरे साहित्यिक-गुरु हैं, अभिभावक हैं और मैं सतत उनके वात्सल्य का उपभोक्ता। उनकी उस लम्बी साहित्यिक साधना और असीम सौहार्द का--जिससे हमें प्रेरणा, प्रगति और प्रोत्साहन मिला है—समस्त विन्ध्य-खण्ड ऋणी है।

राज-नैतिक क्षेत्र में इस खण्ड के एक ऐसे ही संस्कृत साधक दीवान शत्रुघ्नसिंह जी हैं। श्री गांधी रा०वि०इं० कालेज राठ के जन्मदाता हैं और उस मंगरौठ-ग्राम के नव-निर्माता जो आज देश का आशा-केन्द्र बनने

जा रहा है। अपने वक्तव्य द्वारा पुस्तक समर्पण स्वीकृत कर उन्होंने जो उदारता प्रकट की है वह मुझे सदैव सुलभ रही है। एक शब्द में उसे कैसे चुकाऊं ?

जिन विद्वानों ने इस पुस्तक पर अपनी शुभ सम्मतियां प्रदान की हैं उनका मैं बड़ा आभारी हूँ। प्रकाशन-कार्य में—सर्वोदय-मण्डल, मंगरौठ के कर्मठ कार्यकर्ता श्री प्रकाश भाई, मुख पृष्ठ-चित्र के निर्माता भाई नसीर अहमद खां साहब, 'अनुसन्धान' के सम्पादक बन्धुवर 'हरिकेश' जी तथा स्वाधीन-प्रेस के प्रबन्धक बन्धुवर सत्यदेव जी वर्मा तथा भाई दुर्गाप्रसाद जी सिद्ध ने जिस आत्मीयता से हमें सहयोग दिया है, एतदर्थ मैं उनका बड़ा कृतज्ञ हूँ। 'श्रद्धा के फूल' लिखकर श्री बुधौलिया जी ने भी अपना ही कार्य किया है, वे मेरे निकट आशीर्भाजन हैं।

जिन मित्रों की प्रेरणा से पुस्तक इतनी शीघ्र प्रकाशित हो सकी है उनमें श्रीमान् पं० श्री लालजी शुक्ल एस० डी० ओ० हमीरपुर, कैप्टेन कुं० शंकरध्वजसिंह जी, श्री लक्ष्मीप्रसाद जी पाठक, श्री बाबूराम जी अग्रवाल एस० डी० आई० तथा पं० चन्द्रशेखर जी शास्त्री के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सावित्री-सदन,
राठ (हमीरपुर)
मकर संक्रांति वि० २०१०

श्यामसुन्दर बादल

:: समर्पण ::

*

स्वतन्त्रता संग्राम के एक वीर सैनिक, श्री गांधी राष्ट्रीय विद्यालय इण्टर कालेज के जन्मदाता, तथा आदर्श ग्राम मँगरौठ के नव-निर्माता बुन्देलखण्ड केसरी—

उन—

दीवान शत्रुघ्न सिंह के कर-कमलों में,

जिनके प्रति मैंने कभी लिखा था:—

जिसका व्रत लेकर राणा लड़े—
तुम में सो स्वतन्त्रता शान बसी है।
जिसके बल छत्र शिवा थे लड़े,
वह देश के प्रेम की आन यशी है।
जिसके बल बापू ने ताप तपे,
वह मानवता उर आन धँसी है।
जिसने भरा जोश जवाहर में
ान लसी है।"

—लेखक

॥ ओ३म् ॥

श्रीगान्धी आश्रम, राठ
(हमीरपुर)
२५-३-५३ ई०

यह पुस्तक, आदरणीय श्री श्यामसुन्दर जी बादल की सुरचनाओं का संग्रह है। श्रीबादल जी के सम्बन्ध में यह सभी जानते हैं कि ये उदीयमान राष्ट्रीय, उच्चकोटि के साहित्यसेवी एवं कवि हैं। आप की कवितायें समय-समय पर जन-हित और जन-रुचि को बढ़ाने वाली होती हैं।

ऐसी ही सुखद और हितकारी रचनाओं का यह संग्रह है, जो हम सब के जीवन में सदा सुरुचि बढ़ा कर मंगलकारी सिद्ध होगा। ऐसी उपकारी पुस्तक का सदा सम्मान होना स्वाभाविक है। सुरुचिपूर्ण भारत-वासी इसे अपनायेंगे, इसे हर क्षेत्र में सम्मान और सहयोग मिलेगा इसमें सन्देह नहीं।

मैं इस की उपयोगिता देख कर परम पिता से यही मंगल कामना करता हूँ और अपने उन्नतिशील विद्यार्थी-समाज से इसके स्वाध्याय से लाभ उठाने की आशा करता हूँ।

मेरे ऐसे साहित्य-सेवा-हीन व्यक्ति का जो सम्बन्ध सुरचना से जोड़ा गया है यह सुकवि की महान् कृपा है। श्री बादल जी जो अपनत्व और ममता मेरे प्रति रखते हैं उसी का यह परिणाम है। मैं इससे गौरवान्वित हुआ हूँ। इसके लिये मैं सुकवि का आभार मानता हूँ और प्रभु से उनकी उन्नति तथा जन-सेवा में सफलता की कामना करता हूँ। ईश्वर सहायक हो।

दीवान शत्रुघ्नसिंह

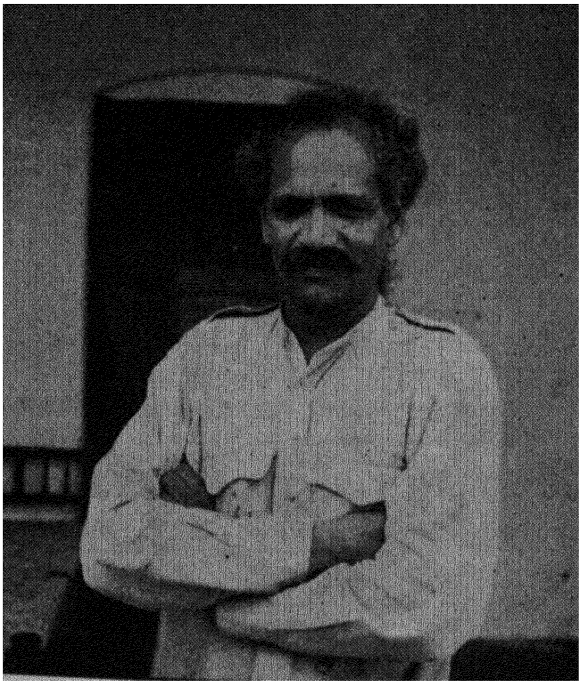

बुन्देलखण्ड केसरी

दीवान शत्रुघ्नसिंह जी,

मँगरौठ (हमीरपुर)

कविवर श्यामसुन्दर बादल
और
उनका काव्य

जब कभी बुन्देलखण्ड अथवा विन्ध्यप्रदेश के किसी साहित्यिक के दर्शन करने या सम्पर्क में आने का सौभाग्य हमें प्राप्त होता है तो हमारे मन में कृतज्ञता हर्ष तथा आशा के भाव एक साथ ही जाग्रत हो उठते हैं।* कृतज्ञता का कारण तो स्पष्ट ही है। पिछले सोलह वर्ष से हम इसी जनपद का अन्नजल ग्रहण करते रहे हैं और उसी के प्रतिनिधि के रूप में हमें राज्य परिषद् में आने का सुअवसर मिला है। इसी भूखण्ड ने हमारे बच्चों को शिक्षा प्रदान की है और हमें मुक्त-आकाश, अनन्त अवकाश और अपने शुद्ध व्यक्तित्व के विकास के लिये पूर्ण सुविधा। इस प्रदेश के हम अत्यन्त ऋणी हैं और इस जन्म तो क्या, अगले जन्म में भी उससे उऋण नहीं हो सकते। बुन्देलखण्ड के सभी साहित्यिकों को हम अपने लिये वन्दनीय मानते हैं। वस्तुतः ये ही इस विस्तृत साहित्यिक जनपद के सच्चे प्रतिनिधि हैं, भले ही कोई राजनैतिक कार्यकर्ता पार्लमेण्ट या एसेम्बली में उक्त जनपद का प्रतिनिधित्व कर ले।

कृतज्ञता की यह भावना ही हमें इस प्रान्त के प्रत्येक सजीव साहित्यिक के सामने नतमस्तक कर देती है और हमारे मन में आशा का संचार होने लगता है। हम कल्पना करने लगते हैं उस भावी युग की, जब इस प्रदेश के रमणीक स्थलों पर ऐसे तपोवनों का निर्माण होगा, जहां भावी लेखकों तथा कवियों और सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं को आत्म-

---

*हमारा अभिप्राय साहित्यिक बुन्देलखण्ड से है। राजनैतिक दृष्टि से तो बुन्देलखण्ड अब भी तीन प्रदेशों में विभाजित है!

प्रकटीकरण के सभी आवश्यक साधन उपलब्ध होंगे। वे उन यज्ञों को पूर्ण करेंगे जिन्हें हम लोग नहीं कर पाये। विन्ध्यभूमि अब भी प्रतीक्षा कर रही है। ऐसे साहित्यिक स्रष्टाओं की, जो इस जनपद के वन-उपवन, पशुपक्षी, नदी सरोवर, वृक्ष जङ्गल तथा मूक मानव को वाणी प्रदान कर सकें।

मङ्गल-प्रभात के यशस्वी कवि बन्धुवर श्यामसुन्दर [जी बादल उन इने-गिने साहित्यिकों में से हैं, जो उस भावी युग के कवियों के लिये रास्ता तय्यार कर रहे हैं। पिछले बारह वर्ष से हम उनसे परिचित हैं और ज्यों-ज्यों यह परिचय बढ़ता गया है, हमारे हृदय में उनके प्रति श्रद्धा भी निरन्तर बढ़ती ही गई है। उनकी विनम्रता, सज्जनता तथा सुशीलता को हमने निकट से देखा है, और हमारा यह विश्वास है कि 'विद्या ददाति विनयं' के उदाहरण स्वरूप बादल जी सा व्यक्तित्व निस्सन्देह उपस्थित किया जा सकता है। वस्तुतः उनका मनुष्यत्व उनके कवित्व से कहीं ऊंचा है।

जिन असाधारण कठिनाइयों से गुजर कर बादल जी ने संस्कृत का अध्ययन किया और तत्पश्चात् माता सरस्वती की आराधना,उनका वृत्तान्त पढ़कर आश्चर्य होता है। आज भी यदि देववाणी अपने उचित स्थान को प्राप्त नहीं कर सकी है, तो उसके लिये जितने अंश में हमारा शासन जिम्मेवार है, उतने ही अंश में संस्कृत के वे विद्वान भी जो हिन्दी की उपेक्षा ही करते रहे हैं। पर वह युग अब बदल रहा है और बादल जी जैसे संस्कृतज्ञ लेखकों तथा कवियों को उस परिवर्तन का श्रेय मिलना चाहिये। माता संस्कृति की ज्येष्ठ पुत्री हिन्दी जिस गौरवमय पद को प्राप्त कर रही है, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने से ही संस्कृतज्ञों के सम्मान में भी वृद्धि होगी। बादल जी ने एक युग पूर्व ही इस सत्य को स्वीकार कर लिया था।

मङ्गल-प्रभात की अनेक रचनाओं को 'मधुकर'में छापने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ था और कई इस पुस्तक में संग्रहीत भी हैं—यथा 'जीवन

निर्झर', 'व्यास जी' और 'श्रमिके'। गुरुभक्ति बादल जी का एक अनुकरणीय गुण है और इस संग्रह में उन्होंने अपने पूज्य गुरुद्वय स्व० गणपति प्रसाद जी चतुर्वेदी तथा स्व० वासीराम जी व्यास को अपनी प्रेमपूर्ण श्रद्धांजलियां अर्पित की हैं। प्रथम महानुभाव के विषय में तो वर्णी-अभिनन्दन ग्रन्थ में एक विस्तृत लेख भी लिखा था। अपने इन आराध्यों का, जो वस्तुतः हमारे लिये भी पूजनीय हैं, जिक्र करते हुये बादल जी का हृदय गद्‌गद् हो जाता है। सौभाग्य से गुरुवर गणपति प्रसाद जी के दर्शन करने का सुअवसर हमें भी मिला था और कविवर व्यास जी से तो वर्षों तक निकट सम्बन्ध रहा था।

स्व० गणपतिप्रसाद जी ने कई सौ विद्यार्थियों को सर्वथा निस्वार्थ भाव से संस्कृत पढ़ाई थी और उनके बीसियों शिष्य प्रशिष्य आज उस जन-पद में विद्यमान हैं। क्या ही अच्छा होता यदि वे सब मिलकर एक छोटे से स्मृति ग्रन्थ द्वारा उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते! उनके शिष्य कविवर स्वर्गीय वासीराम जी व्यास भी, जिन्होंने विस्तृत क्षेत्र में कार्य किया था, जिनकी कीर्ति प्रान्तीय सीमाओं को पार कर अखिल भारतीय जगत् में फैल रही थी, पर जिनकी अकाल मृत्यु से केवल बुन्देलखण्ड की ही नहीं, समस्त हिन्दी जगत की बड़ी हानि हुई, इस साहित्यिक तर्पण के सर्वथा अधिकारी हैं। इस प्रसंग में हमें स्मरण हो आता है, श्रद्धेय मुंशी अजमेरी जी, बन्धुवर रसिकेन्द्र जी तथा कविवर चतुरेश जी का। इस कवित्रयी का श्राद्ध भी हम लोग नहीं कर सके, इससे बढ़कर दुर्भाग्य की और क्या बात हो सकती है? और घोर दुःख तथा परिताप की बात यह है कि कविवर शील जी तथा मधुजी भी, जिनके कोकिलकण्ठों से हिन्दी काव्योपवन गुंजायमान रहता था, अकाल कालकवलित हो गये। जब जब इन स्वर्गीय साहित्य सेवियों का जिक्र आता है, बादल जी के हृदय की वेदना प्रकट हो उठती है और वे इन श्राद्धों में भाग लेने के लिये अपनी उत्सुकता बार बार प्रकट कर चुके हैं।

बादल जी के काव्य संग्रह की कई रचनायें बहुत बढ़िया बन पड़ी हैं।

'श्रमिके' नामक कविता भाषा तथा भाव दोनों की दृष्टि से उच्चकोटि की है। विनोबाष्टक भी काफ़ी प्रभावशाली है। उसका अन्तिम पद्यसुन लीजिये:—

एक झांकता है गर्त से तो नभ से द्वितीय,
भूमि पर आगे युग दृष्टि खिल जायेगी।
घिसट रहा है पंगु कार पै सवार कोई,
दोनों की ही गति एक सूत्र मिल जायेगी॥
एक मरता है भूख से अजीर्ण से तो अन्य,
दोनों में विषमता की नींव हिल जायेगी।
दीन न रहेगा कोई दीनता दिखेगी कहां?
भावे तुम्हें भूमि भावती जो मिल जायेगी।
करना जो स्थापना हमें है रामराज्य की तो,
ग्राम भगवान का हमें है भक्त बनना।

तथा—

'श्रम करने को सबको है भूमि देना श्याम,
श्रम करने को रङ्गभूमियां रचाना है।'

इत्यादि पंक्तियाँ स्वयं ही अपनी ओजस्विता का प्रमाण दे रही हैं। श्री बादलजी का दृष्टिकोण समन्वयात्मक है और वे सर्वोदयवादी विचार धारा के समर्थक हैं। उसी में वे भारत का और जगत का कल्याण मानते हैं। उनके इस काव्य में यत्र तत्र इसी पक्ष का प्रतिपादन है।

बुन्देलखण्ड तथा 'महोबा' से बादल जी का जनपदीय प्रेम प्रकट है। सोन, चम्बल, यमुना, नर्मदा, जामनेर और इन सबसे छोटी जय-द्वार माता को भी श्रद्धांजलि अर्पित करना वे नहीं भूले। जब हमने बादलजी की ये पंक्तियाँ पढ़ीं—

'चित्रकूट में त्राण था,
पाया राम रहीम ने।
माना यहीं असीम सुख,
सीमित हुये असीम ने"

तो हमें कविवर रहीम के उस प्रसिद्ध दोहे का स्मरण हो आया—

'चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध नरेश।
जिहि पै विपदा परति है सो आवत यहि देस'

और साथ ही अपनी निजी दुर्घटना—अनुज वियोग—का भी, जिससे संत्रस्त होने के बाद श्रीमान ओरछेश की कृपा से हमें भी इस भूमि में आश्रय मिला था।

इस संग्रह की दो कविताएँ 'कवि के बयालीसवें में' और 'रे कैसा संसार' आत्मचरित्रात्मक हैं और उनमें बादल जी ने अपना हृदय उड़ेल कर रख दिया है। सन्तोष की बात है कि जीवन के अनेक कटु अनुभवों के बाद भी बादल जी के स्वभाव का माधुर्य ज्यों का त्यों कायम है। और अनेक गार्हस्थिक विपत्तियां उनके उत्साह को मन्द करने में समर्थ नहीं हो सकीं। अभी उस दिन उन्होंने कहा—

'यदि केवल भोजन की समस्या हल हो जाय और कुछ थोड़ा सा पैसा घर भेज सकूं, तो साहित्य सेवा के लिये मुझे अपने कार्य को भी छोड़ देने में कोई संकोच न होगा।'

किसी ४५ वर्षीय भार-ग्रस्त व्यक्ति के लिये इस प्रकार की कल्पना भी आसान नहीं और जिसके हृदय में साहित्य सेवा का उत्कट प्रेम न हो, एक क्षण के लिये भी लगी लगाई वृत्ति को छोड़ने का विचार भी मन में नहीं ला सकता।

बादल जी की शिकायत है कि उनके आस-पास के स्थानों में साहित्यिक संस्थायें चल नहीं पातीं। स्वयं उन्होंने इस दिशा में कई प्रयोग किये हैं, पर उन्हें यथेष्ट सफलता नहीं मिली। मऊरानीपुर में उन्होंने सन् १९३७ में हिन्दी साहित्य समिति की स्थापना की थी और राठ में हिन्दी साहित्य परिषद् की। सन् १९५१ में हमीरपुर जनपद सम्मेलन स्थापित हुआ और आप ही उसके मन्त्री हैं।

पर बादल जी के अनुभव एकाकी नहीं हैं। प्रायः सम्पूर्ण हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र में साहित्यिक शिथिलता विद्यमान है। हाँ, कुछ स्थान अपवाद स्वरूप अवश्य हो सकते हैं। प्रश्न यह है कि इस प्रमाद को रोका कैसे जाय ? वे उपाय कौन कौन से हैं, जिनका अवलम्बन करके हम समस्त हिन्दी संसार को अनुप्राणित कर सकते हैं।

एमर्सन का यह कथन सर्वथा सत्य है कि संस्थायें तो मनुष्य की विस्तृत छाया मात्र होती हैं। वस्तुतः हमारे यहाँ दूरदर्शी और त्यागी कार्यकर्ताओं की कमी है और जो हैं भी उन्हें उचित प्रोत्साहन, उचित नेतृत्व नहीं मिलता। किसी की कटु आलोचना करने की हमारी भावना नहीं, पर यह सत्य बात तो कहनी ही पड़ेगी कि हिन्दी के धनी-धोरियों में Vision दूरदर्शिता का अभाव है,उनकी आत्मा में और शरीर में भी 'राम' नहीं रहे और वे बीते युग के खण्डहर मात्र रह गये हैं। आज के संघर्षमय युग का नवयुवक साहित्यिक केवल मीठे मीठे उपदेशों से सन्तुष्ट नहीं हो सकता। उससे आप तभी कुछ काम ले सकते हैं, जब सहानुभूतिपूर्वक उसकी कठिनाइयों का वृत्तान्त सुनें और उन्हें दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न भी करें। हम लोगों से कहीं अधिक अक़्लमन्द हैं वे वयोवृद्ध पहलवान, जो नये पट्ठों को प्रोत्साहन देते हुये अपने अखाड़ों के खलीफा बन जाते हैं। पर दूसरों की आलोचना करने के बजाय यह कहीं बेहतर है कि जो भी साहित्यसेवी जहाँ विद्यमान हो, वह वहीं पर तन मन से (धन तो उसके पास रक्खा कहाँ है !) उस स्थान के साहित्यप्रेमियों के संगठन में जुट जाय। वयोवृद्धों की सहायता की प्रतीक्षा करना भी हम लोगों की कमज़ोरी का सूचक है। साहित्यिक वातावरण उत्पन्न करने के लिये काशी प्रयाग, कलकत्ता और दिल्ली जाने की आवश्यकता नहीं। पिछले दो स्थानों का तो हमें व्यक्तिगत अनुभव है और काशी वालों तथा प्रयागी पंडों के पारस्परिक सौहार्द के किस्से जगजाहिर हैं ! जनाकीर्ण महानगरों के यथोचित महत्त्व को हम मानते हैं,पर वहीं पर अपनी समस्त

साहित्यिक शक्तियों को केन्द्रित कर देने की नीति के हम घोर विरोधी हैं। वस्तुतः हिन्दी के धनीधोरियों का साहित्यिक दृष्टिकोण ही गलत है। प्रायः वे केन्द्रीकरण की नीति के पक्षपाती हैं। पहले छोटे छोटे स्थानों में साहित्यिक केन्द्र कायम करके फिर उनका संघ बनाने के बजाय, वे पहले एक केन्द्रीय संस्था क़ायम करके उसकी शाखायें स्थापित करते हैं! साहित्य सम्मेलन में सरकारी नियन्त्रणकर्ता की नियुक्ति इस नीति का अवश्यम्भावी परिणाम है। गुड़ की ढेली एक जगह रख दीजिये, चींटे अपने आप वहां इकट्ठे हो जायेंगे। सारी साहित्यिक शक्ति एक स्थान पर केंद्रित कर दीजिये, सत्ता के लोभी उसके चारों ओर चक्कर काटने लगेंगे। हम लोगों में से कुछ तो मठाधीश बन गये हैं, कुछ आत्म-केन्द्रित हो गये हैं। हमारी किताबें कोर्स में लग जांय, हमारे भाई भतीजे भानजे और गुट वाले सरकारी नौकरी पर और हिन्दी जगत् का नेतृत्व तथा संस्थाओं का संचालन भी हमारे हाथ में ही रहे, यह मनोवृत्ति भी आज व्यापक हो गई है। परिणामस्वरूप नवीन लेखकों में निराशा का संचार सर्वथा स्वाभाविक है। यह निराशा इतनी सीमा तक पहुंच चुकी है कि लोग यह ख़्याल करने लगे हैं कि साम्यवाद को लाये बिना साहित्यिकों का उद्धार ही असम्भव है। जहां तक समाज व्यवस्था के बदलने का प्रश्न है, उससे कोई इन्कार नहीं कर सकता, पर यह प्रश्न विवाद-ग्रस्त है कि उसका एक मात्र उपाय साम्यवादी तौर-तरीकों को अख़्तियार करना ही है। अगर किसी भोले-भाले साहित्यिक के मन में यह भ्रम हो कि किसी प्रकार की तानाशाही के क़ायम हो जाने से हमारे साहित्यिक प्रश्न भी हल हो जायेंगे तो उसे अपना भ्रम दूर कर देना चाहिये।

हां, साहित्यिक प्रमाद दूर किया जा सकता है--भिन्न-भिन्न स्थानों के साहित्यिकों के सङ्गठन से तथा समान शीलों के पारस्परिक सहयोग से, निस्वार्थ सेवा से, त्याग से, बलिदान से। वर्तमान सरकार भी कुछ

अंशों में सहायक हो सकती है, यद्यपि सरकारी संरक्षण में सञ्चालित साहित्यिक या सांस्कृतिक संस्थाएं सजीव कदापि नहीं बन पातीं।

बड़ी-बड़ी आयोजनाएं बनाने के बजाय हम छोटे-छोटे काम अपने हाथ में लेकर उन्हें निपटाते चलें तो हमारा आगे का मार्ग स्वयं ही स्पष्ट हो जायगा। उदाहरण के लिये बुन्देलखण्डी साहित्यिक यदि मुन्शी अजमेरी जी, चतुरेश जी, घासीराम जी व्यास, रसिकेन्द्र जी, शील जी, तथा मधुजी इत्यादि की स्मृति को ताज़ा बनाये रखने के लिये कुछ प्रयत्न करें तो उस जनपद में उत्साह की लहर फैल सकती है। इससे भी अधिक आवश्यक कार्य है, बन्धुवर वासुदेव शरण जी अग्रवाल के जनपदीय कार्यक्रम को आगे बढ़ाने का। उसे समझने के लिये उनके ग्रन्थ 'पृथिवी पुत्र' को सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली से मँगाया जा सकता है।

मङ्गल-प्रभात की चर्चा के बहाने हमने हिन्दी जगत के प्रश्नों पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझा। बन्धुवर बादल जी ने इसका अवसर हमें प्रदान किया तदर्थ हम उनके ऋणी और कृतज्ञ हैं।

साहित्यिक दृष्टि से पिछड़े हुये प्रदेश में बादल जी रस की जो वर्षा करते रहे हैं, वह निरन्तर जारी रहे यही हमारी प्रार्थना है। बुन्देलखण्ड में उनका दम ग़नीमत है। वे शतायु हों।

२-१-५४
१२३, नार्थ ऐवेन्यू
नई दिल्ली।

बनारसीदास चतुर्वेदी

विषयानुक्रमणिका ।

ऊषा	पृष्ठ
१—वाणीवन्दन ।	१
२—गुरुदेव !	४
३—वे पद ।	५
४—बाल कृष्ण ।	६
५—द्रौपदी का चीर ।	११
६—महामानव ।	१३
७—चन्द्र क्रीडा ।	१९
८—हमारी चाह ।	२०
जागरण ।	
९—अहभाव ।	२३
१०—वैषम्य	२४
११—मेरे कवि !	२६
१२—मेरे युवक !	२९
१३—मानवजीत ।	३२
१४—प्रगति के पथ पर	३३
१५—सेवा ।	३६
१६—प्रेमी-मोर ।	३९
१७—उन्नीस सौ बयालीस का अगस्त ।	४०
अरुणोदय ।	
१८—स्वागत-गीत ।	४३
१९—स्वातन्त्र्य-गीत ।	४५
२०—पन्द्रह अगस्त ।	४७
२१—शरणार्थिनी ।	४९

पृष्ठ

२२—कवि के बयालीसवें वर्ष में। ५२
२३—रे कैसा ससार ! ५४
२४—जीवन-निर्झर। ५७

शारदघन।

२५—स्वतन्त्रता के बाद। ५९
२६—मेरे गुरुदेव ! ६०
२७—व्याम जी। ६२
२८—स्व० माता कस्तूरबा। ६५
२९—सुभाष। ६८
३०—महाप्रयाण। ७०
३१—श्रद्धांजलि। ७३
३२—दीपावली में अंधकार। ७६
३३—दीवाली के दीप। ७८

मङ्गल प्रभात।

३४—सन्तप्रवर श्री विनोबा। ८१
३५—विनोबाष्टक। ८२
३६—राष्ट्र प्राण। ८६
३७—राष्ट्र कवि। ८९
३८—सृजन और विनाश। ९०
३९—दिन दिन···। ९२
४०—बीमा एजेंट। ९४
४१ किसान। ९६
४२—श्रमिके। १००
४३—बुन्देलखण्ड। १०४
४४—महोबा। १०८
४५—मङ्गल प्रभात। ११०

ऊषा

वाणी-वन्दन

– १ –

पद-नख-चन्द्र-रश्मियों की छटा छाँदे उर,
ज्ञान-सुधा-धारा मेरे कानों में उतार दे ;
छाया जो अज्ञान-अन्धकार उर-चक्षु पर,
आनन-विभा से उसे कर छार छार दे।
मानस में मेरे, भर वीणा कच्छपी के स्वर,
नित्य नये कण्ठ में सुवर्ण हार-धार दे ;
निज निधि सार दे, विसार दे मां, दोष मेरे,
भाल पै पसार दे कृपा का कर शारदे !

– २ –

सेवकों का सिक्का जमा देती चाप-धारियों पै,
बड़े-बड़े पापियों का पाप-पङ्क धोती तू।
मूढ़ों को सतर्क तर्कवादी बना देती तू ही,
कर के पाखण्डियों का मान खंड खोती तू।
रोष दिखलावें रमा, कौन-सा हमारा दोष,
चिन्ता किसे, दास हेतु ज्ञान-कोष होती तू ;
होती के सहायक तो होते सब ही हैं किन्तु,
'श्याम' अब होती में सहाय अम्ब होती तू।

– ३ –

पूर्ण-चन्द्र-आनन-प्रकाश छिटकाती 'श्याम'
भव्य-भाव-वीचि हृदयाब्धि में बढ़ाती आ;
अक्षय बनाती मेरा दिव्य शब्द रत्न कोष,
जोश को दिलाती उर तोष उपजाती आ।
नागरी गिरा की सेवा-साधना सधाती दृढ़-
धारणा बनाती, भद्र-भावना जगाती आ;
ले सितार पाणी मेरी वाणी में मिलाती तार,
ओ री- अम्ब, वाणी सूक्ति सार सरसाती आ।

– ४ –

लोभ-मोह-मान के परिन्दे बसे मेरे मन,
वरदे, उड़ा जा इन्हें आ जा बन बाज तू;
स्वच्छ कर मञ्जु मन मन्दिर बना ले इसे,
जहां काव्य-कला के स्वकीय साज साज तू।
मेरी तान-तान पै जगा दे छत्रसाल-शिवा,
सैकड़ों उठा दे, मां बचा ले देश लाज तू;
मानस से मानसर—हंस-वाहिनी आ अम्ब,
अब मम मानस के हंस पै विराज तू।

– ५ –

आर्यों के उद्दण्ड भुज-दण्ड हो उठें प्रचंड.
ऐसी ध्वनि चंडी चण्ड-वीणा ले धुकारी जाय;
'श्याम' रिपु-हृदय हिला दें, वे दिखा दें पीठ;
देश की स्वतन्त्रता स्वदेश में निहारी जाय!
'चन्द' चमकाए जांय, 'भूषण' गढ़ाये जांय
तेरे लाड़लों में वीर-रसता विचारी जाय;
भारती पुकारती हमारी भारती आ अम्ब,
भारतीय-भू पै तेरी आरती उतारी जाय।

'माधुरी' नवम्बर १९४३

गुरुदेव

आत्मज समान मान-
अपना लिया है मुझे,
जान दीन, दास पर
ध्यान कितना दिया !

शब्द बोध सान्त्व दया
दान स्नेह दे अनन्त,
गर्त से उठा तुरन्त-
मान से बिठा दिया।

श्याम जिस मानस-
प्रसाद का भिखारी रहा,
पूज्य पाद, वही इस
दास को घना दिया।

मेरे गुरुदेव ! भाल-
छा दिया कृपा का कर,
क्या न दे दिया है जब
ज्ञान का दिया दिया।

पूज्यपाद श्री पं० गणपति प्रसाद जी चतुर्वेदी,
मऊरानीपुर (झांसी)

वे पद

पड़ती है पाषाण में जान अहो,
जिनके रज का कण पा करके;
जिनके नखों का उपमान किये–
बढ़े मान सदैव कलाधर के।

न निराश हो 'श्याम', लगाते वही
तट माझी दयालु दया करके;
भ्रम-भूलने में मत भूल अरे!
पद भूल न वे करुणाकर के।

बाल-कृष्ण

(१)

बाल वृन्द में नया बाल बन जाने वाला,
खेल खेल में नया ख्याल बन जाने वाला
नय चक्रों में नई चाल बन जाने वाला,
जन हालत पर वह विहाल बन जाने वाला।

केवल वृन्दावन नहीं—
विश्व बना जिससे अभय।
हमें चाहिये बाल वह—
रहा दीन पर जो सदय।

(२)

ग्रामीणों में नवल नेम भर जाने वाला,
नागरिकों में पुण्य-प्रेम भर जाने वाला;
जन-जन में अक्षुण्ण क्षेम भर जाने वाला,
गृह-गृह में वह दिव्य हेम भर जाने वाला।

जिसमें शोभित ही रही-
मानवीय अति रेकता।
हम चाहें, जिस बाल में-
सब गुण की थी एकता।

(३)

प्रलयंकरी पूतना-उर झड़ जाने वाला,
तृणावर्त-तूफान साथ उड़ जाने वाला,
अह अगाध- आवर्त कूद पड़ जाने वाला,
क्रुद्ध कालिया विषधर से लड़ जाने वाला।

जो निरस्त्र ही पिल पड़ा-
महा समर की आग में।
हम वह चाहें बाल जो-
गा विराग दे राग में।

(४)

ब्राह्मण जब स्वाध्याय छोड़ लड़ने वाले थे,
क्षत्रिय रख सब शस्त्र तुला धरने वाले थे,
चरवाहे बन वैश्य विपिन बसने वाले थे,
शूद्र छांह से भी त्रिवर्ण बचने वाले थे।

यों सामाजिक शृंखला-
टूटी-जिसने बांध ली।
हम चाहें वह बाल जो
नष्ट कर सका धांधली।

(५)

मधु पुरीश को मलकर जिसने राज्य न चाहा,
जरासंध को छलकर जिसने राज्य न चाहा,
चेदिराज को दलकर जिसने राज्य न चाहा,
चाहा जिसने प्राणि-मात्र सुख राज्य न चाहा।

'नर पर नर अधिकार नय'-
जिसके लिये गलीज था
हम वह चाहें वाल जो
प्रजातन्त्र का बीज था।

(६)

गौतम ने सर्वस्व त्याग व्रत जिससे पाया,
शंकर ने अपना विराग-व्रत जिससे पाया,
शिवा-छत्र ने देश-राग-व्रत जिससे पाया,
गान्धी ने विश्वानुराग-व्रत जिससे पाया।

बीस जवाहर को मिली-
जिससे अवसर की परख,
हम वह चाहें वाल जो-
साध सका गिरि एक नख।

(७)

इस बालक पर नहीं बालिकायें मोहित थीं,
इस बालक पर न हि ब्रजाङ्गनायें मोहित थीं,
इस बालक पर नहीं वृद्ध मायें मोहित थीं,
इस बालक पर सभी पुरुषतायें मोहित थीं।

जिसके आनन चन्द्र का-
सारा विश्व चकोर था।
हम वह बालक चाहते-
जो सबका चितचोर था।

(८)

शंकर ने अद्वैत-वाद पाया गीता से,
रामानुज ने द्वैत-वाद पाया गीता से,
लोक मान्य ने कर्मवाद पाया गीता से,
सब ने निज-निज पंथ वाद पाया गीता से,

आज अहिंसा-वाद की-
गंगा जिस गिरि से बही।
हम चाहें वह बाल जो,
गा दे फिर गीता वही।

(६)

धर्म-क्षेत्र में करदी जिसने महा-क्रान्ति थी,
संस्कृति में भी भरदी जिसने महा-क्रांति थी;
शासन में ला धरदी जिसने महा-क्रांति थी,
नीति न्याय पर जड़ दी जिसने महा-क्रांति थी।

महा-क्रांति की मूर्ति धर-
प्रकटा स्वयं विराट् था।
हम वह चाहें वाला जो-
विश्व-हृदय सम्राट् था!

द्रौपदी का चीर

(१)

मानो, मैं नहीं हूं महारानी महारथियों की,
पाओगे अनाथिनी ही मुझे देख जाओ तुम !
रावण भी सती को सता न सका, 'सत्य' किन्तु-
पड़ी महारावण के हाथ हूं, बचाओ तुम !
तारी गौतमी थी 'श्याम' शबरी उबारी किन्तु-
द्रौपदी-पुकार ही पै क्यों न कान लाओ तुम ?
मेरे साथ आज महिला-समाज डूबता है,
आओ ब्रजराज ! आओ देर न लगाओ तुम ।

(२)

बीज सब-सृष्टि का है क्षेत्र भी वही है 'श्याम'
रूप है उसी का रुई चरखे का तांता है
कातता वही है कतता है वही जाता बुना,
उसी सर्वरूप से ये विश्व सजा जाता है ।
उसके विराट रूप में अनेक विश्व लीन,
वही विश्व रूप जन-त्राण बन जाता है ।
दुश्शासन हुआ है निराश नहीं पाता पार,
द्रौपदी के चीर में वही तो बढ़ा आता है ।

(२)

खींच खींच हारा पट पसीना-पसीना हुआ,
दुश्शासन दुष्ट दीन हुआ गड़ा जाता था।
नारी-मुख दिव्य-तेज फैला चकाचौंध हुये,
सभासदों का मलीन-मुख झुका जाता था।
पाण्डु-पुत्र भीष्म द्रोण विदुर से साधुओं के,
मानस का हर्ष लोचनों से बहा आता था।
लोक जै जै कार से दिगन्त को गुंजा रहा था,
नभ द्रोपदी पै दिव्य फूल बरसाता था।

महामानव

(१)

ब्रह्मचर्य यम, नियम साधकर-
ब्राह्मणत्व, राखा भारत का;
सत्याग्रह का शस्त्र उठाकर-
क्षत्रियत्त्व राखा भारत का;
कृषि गोरक्षा कर विदेश तक-
वैश्य-धर्म राखा भारत का।
जिसने सेवाव्रत महान ले-
शूद्र-धर्म राखा भारत का ।
सबका प्रतिनिधि बन भारत का-
जो जग में था मान बढ़ाता।
कौन हमारे उस बापू के-
जग में गौरव-गीत न गाता ?

(२)

जिसको पाकर कर्मचन्द ने
पुत्रवान् की पदवी पाई।
जिसको पाकर धन्य हो गई-
अखिल-विश्व में पुतली बाई।
अबला से 'बा' को जिसने था-
सबला महिला-रत्न बनाया;
कर आये कंकड़ को जिसने,
कर अमोल-हीरा दिखलाया !
जिसके बसने पर कुटीर भी,
कौंसिल चेम्बर था बन जाता।
कौन हमारे उस बापू के-
जग में गौरव गीत न गाता ?

(७)

चूस चूस कर मज़दूरों का
तन जिसने कंकाल बनाया ;
शोषण कर-कर कृषक-जनों को
जिसने अपनी ढाल बनाया ।
जिस पर है साम्राज्य-वाद की,
भित्ति विशाल खड़ी इतराती ।
जिसकी भभकाई रणाग्नि में
विश्व शांति स्वाहा हो जाती ।
उस मशीन-युग को पलटाने,
जो नित चरखा चक्र चलाता ।
कौन हमारे उस बापू के,
जग में गौरव-गीत न गाता ?

(८)

कोटि-कोटि दीनों के जिसने,
अश्रु, अश्रुओं से धोये हैं ;
मातृ-भूमि पर स्वावलम्ब के,
जिसने सदा बीज बोये हैं ।
जिसकी चाह रही, भारत का,
कोना-कोना नन्दन-वन हो ;
जिसकी चाह रही भारत की,
कुटिया-कुटिया देव-सदन हो ।
रक्त बहाये बिना हमें जो,
आज़ादी तक है पहुँचाता ।
कौन हमारे उस बापू के
जग में गौरव-गीत न गाता ?

(६)

जो कहते थे कूटिनीति के-
बिना स्वराज्य कहां रक्खा है ?
जो कहते चरखा तकली से
अपना ताज कहां रक्खा है ?
जो कहते थे बिना शस्त्र के,
कौन स्वत्व निज लौटा पाया ?
जो कहते थे खादी कैसे,
देगी हमें हमारी माया ?
उन सबही का जिसके सम्मुख
श्रद्धा से मस्तक झुक जाता।
कौन हमारे उस बापू के,
जग में गौरव-गीत न गाता ?

(१०)

नोआखाली में घूमा था
प्राण हथेली पर जो लेकर ;
पश्चिम की प्रलयाग्नि बुझाई,
थी जिसने निज आहुति देकर।
जिसके अनुयायी हो हमने,
भार गुलामी के ढोये हैं ;
जिसके सत्य अहिंसा सम्मुख
अणु-उदजन बम भी रोये हैं।
जिसके पथ पर, जिसकी गति पर,
अखिल-विश्व हित का है नाता।
कौन हमारे उस बापू के,
जग में गौरव गीत न गाता ?

(११)

जिसने भारतीय--संस्कृति का
एक नया संस्कार किया था ;
जिसने दीनों की दुनियां में,
वभव का सञ्चार किया था ;
प्राणों की गांठों में प्रण को,
कस जिसने उद्धार किया था।
सत्य अहिंसा के वल जिसने,
एक-स्वप्न साकार किया था।
जिससे वन्धन-मुक्त वनी है,
आज हमारी भारत-माता ;
कौन हमारे उस वापू के.
जग में गौरव-गीत न गाता ?

(१२)

हम सवका कर्तव्य यही है
आज उसी का पथ अपनाएँ ;
गति का एक एक पद,
उसके पद-चिन्हों के साथ विठाएँ।
वापू के वन्दे वनकर क्यों,
आज प्रलोभन में फँस जाएँ ?
आंधी उठी, चलें वचकर, क्यों-
आपुस में ही लड़ मर जाएँ ?
जिसका जीवन हमें आज भी,
त्याग प्रेम का पाठ पढ़ाता।
कौन हमारे उस वापू के
जग में गौरव-गीत न गाता ?

चन्द्रक्रीडा—

(१)

नभ—कानन देवनदी—अवगाहन-
में निखरी द्युति देह की फूली।
घन—आवरणों में छिपे—छिपे ही,
रचे चित्र-विचित्र ले कौन सी तूली।
नखतावलियां लिये घेरती सी-
उर पै अधिकार पा रोहिणी झूली।
ब्रजचन्द्र से चन्द्र जो सीखली थी,
वह चाचर-क्रीडा तुम्हें नहीं भूली।

(२)

शुचि-शारदी जो तुम्हें राका मिली,
निकले निज भौंन से मञ्जुल मौनी।
ललचा गया मानस खेलने को,
नभ की यह नीलिमा जो लगी लौनी।
छिपते कभी बादलों के दलों में,
कभी देते दिखा गति ओहो अन्हौनी।
प्रिय, तारा-सहेलियों के संग में,
तुम खेल रहे शशि! आंख मिचौनी।

हमारी चाह—

(१)

टिकता कर्तव्य के पन्थ न पैर,
अगाध को ही अवगाहते हैं;
मन-अस्थिर को थिर कीजिये देव,
हैं आपके ही जन जानते हैं।

इस देश में मानव जन्म दिया,
जब तो निभ जाय ये चाहते हैं;
कुछ भीख हमें नहीं चाहिये जी,
अपना अधिकार ही चाहते हैं।

(२)

हमें पुच्छ-विषाण दिये न विभो,
शुभ-आकृति में गति उन्नति दी है;
तृण पत्र से पोषण पाया नहीं,
हमें अन्न उपार्जन की मति दी है।

हम आतप वृष्टि नहीं सहते,
गृह-साधन-सूत्र समुन्नति दी है;
यहां मानव जन्म दे क्या न दिया,
गुण ज्ञान दिया शुभ सद्गति दी है।

(३)

'तुम राम ! रमे हुये विश्व में हो',
सभी को यह मान के चाह सकें ;
बल दीजिये 'श्याम' हमें इतना,
कि न बन्धुओं से कर डाह सकें ।

परमार्थ में कष्ट सहें अति ही,
मुख से कर किन्तु न आह सकें ;
सुरता हम चाहते ही हैं कहां ?
बस मानवता ही निबाह सकें ।

(४)

किसे 'श्याम' अमित्र बनायें अहो !
यहां कौन हो मित्र हमें अति प्यारा ;
हम ज़ोर जनायें कहां ? किस पै,
बरसे यह क्रोधमयी विष-धारा ।

बने भार-स्वरूप सभी के लिये,
किस पै करना अधिकार विचारा ।
अग में, जग में जब व्यापक है,
अखिलेश ! अखण्ड स्वरूप तुम्हारा ।

(५)

शाह नहीं हो यतीम नहीं तुम.
शाह तुम्हीं हो यतीम भी हो तुम ;
दोस्त गनीम किसी के नहीं,
करतूत के दोश्त गनीम भी हो तुम।

गोरे न हो तुम, काले न हो, पर
क्राइस्ट, कृष्ण, करीम भी हो तुम।
'श्याम' हमें सुझा दीजिये नाथ !
कि 'राम तुम्हीं हो रहीम भी हो तुम।'

['आनन्द का परिचयांक']
दिसम्बर १९४४

जा*ग*र*ण

अहम्भाव —

कांटों में हम फूले।
पाकर कोमल मधुमय काया,
मागध मधुकर का यश गुञ्जन,
क्यों इतना आराधन-साधन,
कितवों की चालों में आकर ठग गये हम भूले।
कांटों में हम फूले।

हीरक-हार उषा पहिनाती,
प्रिय प्रभात प्रहसन को पाये,
पर मध्याह्न दुर्दिवस आये,
अह! निष्ठुरतम झंझानिल ने क्यों त्रिशूल से हूले।
कांटों में हम फूले।

बढ़ी कामनायें मानस में,
हम भी नृप-उर-हार बनेंगे,
महादेव के भाल चढ़ेंगे,
दीन हीन जग आकर मेरी छाया ही क्यों छू ले।
कांटों में हम फूले!

वैभव लुटा मिला अपनापन,
हुये पद-दलित पङ्किल-मग में,
पछताये फँस स्वप्निल-जग में,
अहंभाव के उदधि-ज्वार पर चढ़े-चढ़े हम झूले।
कांटों में हम फूले।

[आनन्द, दिसम्बर १९४४]

वैषम्य—

उधर मखमली शय्या पर,
हे मनुजा व्यजन डुलाती।
नग्न-भूमि पर यहां,
क्लांति की तपन नींद बन जाती।

महलों के मणि-दीप वहां,
नभ-तारों से इठलाते;
कितने यहां तमिस्र कुटी में,—
जीवन दीप जलाते।

सप्त स्वरों की साधें,
झुक-झुक वहां 'सलाम-बजातीं';
यहां वेदना की मींड़-
घुट-पिस यों ही मर जातीं।

उधर उठ रही नूपुर-ध्वनि है,
इधर कलेजा फटता;
वहां वर्ष पल बना, यहां पर,
पल-पल युग सा कटता।

प्रमदाओं के हार टूट कर
मुक्ता वहां बिखरते;
यहां नयन-सीपी से ढलकर,
मानस—मुक्ता झरते।

वहां परोसा गया श्वान के,
सम्मुख पट्-रस भोजन ;
कब से मचला हुआ यहां,
पर, टुकड़े को जीवन धन।

जिन पर वहां लुटाये जाते,
हैं असंख्य पाटाम्बर,
पञ्च तत्व के वे ही पुतले,
प्रायः यहां दिगम्बर ।

क्यों वैषम्य अरे, इतना,
मानव-मानव में धाता ;
अगर कर्म तो, जगन्नियन्ता,
उसका कौन विधाता ?

हम कपूत हो सकते हैं ,
पर पिता न कुपिता होता ;
तेरे सम्मुख एक हँस रहा,
एक अरे, क्यों रोता ?

यदि है कहीं बहाई स्रष्ट —
साम्य-वाद की धारा ।
हम भी आप्लावित हों उसमें
धोकर संचित सारा ।

मेरे कवि—

आग लगाना छोड़ कवे ;
अब बरसा तू अमृत की धारा !

(१)

सुधा-कुम्भ है, भरा हलाहल,
मानस के सागर में तेरे ;
चाहे ज्वाला उगल, डार दे,
या शीतल धारा कवि मेरे !
शब्द ब्रह्म के और उपासक,
तू निज शक्ति माप रे साधक ;
रचती है भविष्य तेरी ही,
कलम और अक्षर--आराधक !
तूने निज गण भुला, बनाया,
क्यों अपना पथ-दर्शक न्यारा ?
आग लगाना छोड़ कवे ! अब,
बरसा तू अमृत की धारा ।

(२)

'दिवंगते' निकला वाणी से,
महान की थी हत्या होती ;
"नहि नहि भुवंगते" तत्क्षण ही,
कवि वाणी कृत कृत्या होती ।
तूने जब से हटा लिया निज,
पर से गण का और नियंत्रण ;

तब से तेरे 'जरसत'* देते,
शत शत प्रलयों को आमन्त्रण!
'उठ तूफान, उगल ज्वालायें,
अरे हिमालय' तेरा नाम;
आग लगाना छोड़ कवे! अब,
बरसा तू अमृत की धारा।

(३)

टेसू के सुन्दर फूलों में,
तेरी गिरा आग सुलगाती;
सुरभित मलयानिल ही तुझको,
जेठी लपटों सी झुलसाती।
भृङ्गों के गुञ्जन में तुझको,
नित्य प्रलय का गान सुनाये;
तेरे हृदय काकली—ककी,
स्याम बोलती सी दहलाये।
मारकाट के अन्धकार में,
तूने राहु रूप ही धारा।
आग लगाना छोड़ कवे! अब,
बरसा तू अमृत की धारा।

---

*जरसत से कवि का अभिप्राय पिंगल के जगण, रगण सगण और तगण से है। ये चारों गण अमंगल-प्रद माने गये हैं।

(४)

सत्य अहिंसा के गायक ने
तेरे द्वार लगाई फेरी ;
भला किसी की क्या सुन सकता,
बजा रहा तू रण की भेरी !
रण-भेरी ही बजा अरे ! यदि-
कोई शत्रु दिखाये आता ;
भाई-भाई में न यादवी-
अरे बुला संहार विधाता !
तेरी भौतिक-शक्ति शत्रु का-
आज उतार सकेगी पारा ?
आग लगाना छोड़ कवे,
अब बरसा तू अमृत की धारा ।

[माधुरी वैशाख २००४ वि० ।

मेरे युवक—

वीर, कृपाण म्यान में करले।
प्रतिशोधिनि रे, बस स्वमातृ-मुख,
पर, अब, लगी कालिमा हर ले।

(१)

जिसके हित वर्षों से तूने,
सतत अनेक प्रयत्न किये हैं;
कितने चढ़ा-अरे! जिसके हित,
बलि वेदी पर रत्न दिये हैं।
जिसके पाने को स्वेच्छा से,
इतनी हानि उठाई भाई;
उस स्वतन्त्रता की रक्षा-हित,
क्यों न सहे कुछ भाई-भाई।
अरे! गुलामी के कुकृत्य ये
तू भी मत गुलाम बन धरले।
वीर कृपाण म्यान में कर ले।

(२)

अगणित आज विरोधी तुझको,
खड़े सब तरफ से घेरे हैं;
समझ रहा तू अपना जिन को,
वे ही प्रबल-शत्रु तेरे हैं।
जिससे आजादी छीनी है,
क्या वह तेरा कम दुश्मन है?

मानव गीत—

मैं मानव हूं कब मानवता
से प्यार किया करता हूं !
मैंने ही हिम-तल के नीचे,
पानी में आग लगाई ;
नभ-चुम्बी बड़वानल से
मैंने ही शिखा उठाई ।
मैं ज्वार उठा उद्वेलित,
पारावार किया करता हूं ।
मैं मानव हूं कब मानवता
से प्यार किया करता हूं !
सङ्गठित हुये परिमाणु कि जिसने,
रे ! क्षण में विलगाये ।
मैं वही कि जिसने अह. इस—
भूतल पर हैं प्रलय उठाये ।
मैं गृध्र स्वत्व में राग द्वेष,
गल हार किया करता हूं ।
मैं मानव हूं कब मानवता
से प्यार किया करता हूं !
अगणित- कारायें भरीं, न—
अपना स्वप्न टूटने पाया ;
अविरल-धारायें बहीं, न—
अपना एक बिन्दु ढुलकाया ।
मैं यम-कारा के नित नव
निर्मित द्वार किया करता हूं ।
मैं मानव हूं कब मानवता
से प्यार किया करता हूं ?

प्रगति के पथ पर—

धीरे-धीरे अपने पथ पर,
कदम तुम्हें बढ़ते रहना है।

होती है अभिशाप-वृष्टि तो
हो लेने दो परवा क्या है ?
बरद विश्व है तो झुक जाओ,
गर्व रहा तो गुरुता क्या है ?
तुम्हें छोड़ यदि साथी आगे,
बढ़ते हैं तुम रुकते क्यों हो ?
पीछे वाले भी धकेल कर
बढ़ते हैं तुम थकते क्यों हो ?

सिन्धु लांघकर, अचल कुचल कर,
प्रिय ! तूफ़ान चीर चलना है।
धीरे—धीरे अपने पथ पर,
कदम तुम्हें बढ़ते रहना है।

यदि फूलों की राह ढूंढ़ते,
फिरे, न कुछ भी कर पाओगे।
पथ-दर्शक की खोज रही तो,
खोज-खोज ही रह जाओगे।
साथी अपना तुम्हें मिला है,
औरों की फिर खोज भला क्यों ?
आते—जाते सभी अकेले,
एकाकी पन तुम्हें खला क्यों ?

शूल गड़ेंगे तुम्हें भला क्या,
तोड़ त्रिशूल तोड़ बढ़ना है।
धीरे-धीरे अपने पथ पर,
कदम, तुम्हें बढ़ते रहना है।

यदि उर्वर में धान्य उगाया,
तो तुमने है क्या कर पाया ?
यदि पुर में ही गेह बसाया,
तो तुमने है क्या कर पाया ?
ऊसर और मरुस्थल पर अब,
नन्दन वन लहराना होगा।
खण्डहरों पर महल खड़े कर,
दिव्य-प्रकाश जगाना होगा।

भूल गुलाब गदूला चमेली,
नभ के फूल तुम्हें चुनना है।
धीरे-धीरे अपने पथ पर,
कदम तुम्हें बढ़ते रहना है।

ऊंचा-नीचा पन्थ तुम्हारा,
बाहु विशाला बनाते जायें।
अचला देख कर तुम्हें अचला भी,
हृदय खोलकर राह दिखायें।
यदि निज पथ पर ही समाप्ति का,
योग मिले तो सुन्दर क्या है ?
यदि चिर जीवन है तो ऊंचे,
पहुँचोगे तुम मन्दर क्या है ?

एक लक्ष्य से, निश्चित पथ से,
तुम्हें न एक इञ्च हटना है।
धीरे-धीरे अपने पथ पर,
कदम, तुम्हें बढ़ते रहना है।

'राष्ट्रदूत' १५ अगस्त सन १९४९ ई०

सेवा —

—: नदी :—

जलधारा सुधा सी बहाती हुई,
कितनों की पिपासा बुझाती यहां।
कितनों का अरे, मल धोती हुई,
धरा पावन पुण्य बनाती यहां।
जग के उपकार की भावना ले,
अति आकुल सी बढ़ी आती यहां।
सरिते! निज-जीवन का सर्वस्व,
बहाकर तू यश पाती यहां।

—: भूमि :—

सब प्राणियों को सम-भाव से लेकर,
गोद में मोद मनाती रहे।
द्रुमों के मिस रोम उठाती हुई,
पुलकावलियां दिखलाती रहे।
धन-धान्य फलों का सदा यह,
दान दे सार्थक जन्म बनाती रहे।
हंसती हुई फूल झराती हुई,
धरा गन्ध का सार लुटाती रहे।

—: मेघ :—

अति भीषम ग्रीषम-ताप बुझा,
सुख शान्ति दिया करें बूंदें झरा-झरा।

वन वाटिकाओं को सजा-सजा श्याम'
ये नीरस-क्षेत्र बनाते हरा-हरा।

निज--जीवन दान दिया करते,
भरते जगती में सनेह खग खरा।

अहो! पूछिये तो किसके कहे से,
सदा सींचते वारिद ये हैं वसुन्धरा।

—: गिरि :—

नित आगतों का करें स्वागत ये,
फल-वृक्ष अनेक स्व-वक्ष पै धारे।

रखते निधियां मणि धातुओं-की,
जड़ी-बूटियों से हरे रोग हमारे।

सरितायें सनेह की श्याम' बहा-बहा,
सङ्कट काटें अकाल के सारे।

लड़ते सो लड़ें, इन्हें क्या पड़ी जो,
पड़े राह में आड़ पहाड़ विचारे।

— : त्रिटपी :—

लहराते रहें सदा फूलें, फलें,
यह जान लें आलसी झींखने वाले

फल घातकों को ही दिया करें ये,
जरा सोच लें शत्रु पै चीखने वाले।

गिरते कटते, जलते परकाज,
करैं यह देख लें दीखने वाले।

जग में यदि सीखना है किसी को,
कुछ सीख लें वृक्ष से सीखने वाले।

[माधुरी, जनवरी १९४६]

प्रेमी-मोर

(१)

बन सन्त गया जो बसन्त के प्रेम में,
सो पिक पावस को कब जाने ?
नित दीप शिखा का सनेही पतङ्ग,
दावानल ज्वाल सों क्यों हित ठाने ?
चित चन्द्र को बेच दिया जिसने,
सो चकोर दिनेश को क्यों पहिचाने ?
घन पै जो विभोर हो मोर मरै
वह कैसे भला मधुमास को माने ?

(२)

सुषमा ऋतुराज की भाये नहीं,
कलकण्ठ का गीत जिसे न सुहाता।
मधुमास की मोहनी चांदिनी पै,
कभी भूल न जो अहो आंख उठाता।
पर मेघ का आगम देख नभस्तल,
नाच उठे प्रिय-प्रेम में माता।
सब ओर से 'श्याम' हटा कर मानस,
मोर से सीखे सनेह का नाता।

उन्नीस सौ ब्यालीस का अगस्त—

आज गरल घोला है किसने ?

(१)

इस उपवन के खण्ड-खण्ड पर,
किसने चण्ड आग सुलगाई ?
इस भू को पाताल पठाने,
किसने गङ्गाजली उठाई ?
अरे कहां से शरदचन्द्र पर,
आकर पड़ी राहु की छाया
किसने भोले को ताण्डव का,
अरे, भयावह ध्यान दिलाया ?
अघ, आतङ्क, क्रूरता का रे,
खोल दिया झोला है किसने ?
आज गरल घोला है किसने ?

(२)

सांवर्तक—मेघों को किसने
अरे, निमंत्रण आज दिया है ?
किसने उनश्वास पवनों को,
प्रेरित अह, इस ओर किया है ?
अरे, हिमालय की चोटी पर,
किसने ज्वालामुखी जगाया ?

किसने इस प्रशान्त सागर में,
वडवा-अनल अरे धधकाया ?
मुनियों की रे इस बस्ती पर,
दाग दिया गोला है किसने ?
आज गरल घोला है किसने ?

(३)

इन कङ्कालों से बलात् रे
किसने हैं प्रिय प्राण निकाले ?
किसने मानस—मरालिनी के,
शावक हैं पिंजड़े में डाले ?
अरे गोद में सोने वाले पर,
किसने है खड्ग उठाया ?
आह, रोटियों के भूखे याचक,
पर किसने वज्र गिराया ?
जलने वालों की छाती पर,
भून दिया होला है किसने ?
आज गरल घोला है किसने ?

(४)

गरज-गरज कर निकल पड़ी रे,
इन मरने वालों की टोली ।
अरे, कण्टकों की चुन-चुन कर,
लगी प्रज्वलित होने होली ।

हिरण्याकुश के जल्लादों ने
प्रह्लादों पर अस्त्र गिराये ।
बलि जाने वाले स्वदेश पर
कब बल से काबू में आये ?
शेरों को परतन्त्र समझ कर,
अरे हीन तोला है किसने ?
आज गरल घोला है किसने ?

(५)

किसने मानस तपा-तपा कर,
सारा मैल हमारा धोया ?
किसने अपना हृदय दिखाकर,
भ्रम, विश्वास हमारा खोया ?
मृग-मरीचिकायें दिखलाकर,
किसने बार-बार ललचाया ?
इस भूले भटके प्यासे ने
आत्म-तोष अणुमात्र न पाया ।
पारतन्त्र्य के शिखर चढ़ाकर,
अन्तर्पट खोला है किसने ?
आज गरल घोला है किसने ?

अरुणोदय

★

स्वागत-गीत

स्वतन्त्रते ! स्वागत है स्वागत,
शत-शत स्वागत तेरा ।

(१)

सफल बनाई आज तपस्या
तूने साठ बरस की ।
तोड़ी आज शृंखला तूने
परवशता अपयश की ।
सर्व व्यापिनी घर घर तेरा
आज हो रहा फेरा ।
स्वतन्त्रते, स्वागत है स्वागत
शत शत स्वागत तेरा ।

(२)

तिलक, मदन मोहन ने होगी,
वहां शान्ति अति पाई ।
बापू, बोस जवाहर दिल की,
तूने तपन बुझाई ।
देवि हमारी ऊषा, आई,
करने सुखद सवेरा ।
स्वतन्त्रते, स्वागत है स्वागत,
शत-शत स्वागत तेरा ।

(३)

भगत, चन्द्रशेखर ने बोटी-
बोटी कटवाई थी ।
तुझ पर ही कितने मस्तानों,
ने गोली खाई थी ।
तेरे लिये रचाया था वह
नौ अगस्त का घेरा ।
स्वतन्त्रते स्वागत है स्वागत,
शत-शत स्वागत तेरा ।

(४)

ग्राम-ग्राम अब स्वर्ग बना तू,
वन-वन नन्दन करदे ।
राम राज्य विस्तारित करदे,
सुख-समृद्धि घर घर दे ।
अब तू देवि, डाल दे अपना,
अचल यहां पर डेरा ।
स्वतन्त्रते ! स्वागत है स्वागत,
शत-शत स्वागत तेरा ।

स्वातंत्र्य-गीत—

वह उठी सुगन्धिता,
स्वतन्त्रता मयी बयार।

(१)

हर एक खिल उठा वदन,
हर एक खिल उठा है मन,
रोम-रोम हैं खड़े—
हर एक खिल उठा है तन.

अङ्ग-अङ्ग से बही है,
हर्ष की अपार धार।
वह उठी.....

(२)

आज खिल उठे निकेत,
अपनी भूमि अपने खेत,
आज अपने हो गये—
हिमाद्रि के हैं शृङ्ग श्वेत।

अपने सिन्धु में ही आज,
उठ रहा है हर्ष-ज्वार।
वह उठी.....

(३)

गूँजता गगन है आज,
गूँजता पवन है आज,
सरि-निनाद से समस्त—
गूँजता भुवन है आज।

कोटि-कोटि हृदयों के,
बज उठे हैं तार-तार।
वह उठी ....

नभ में मुदित चकोर है,
वन में प्रसन्न मोर है,
आजाद हुये हिन्द का—
बोलो, न कहां शोर है?

स्वतन्त्रता खड़ी-खड़ी—
पुकारती है द्वार-द्वार।
वह उठी सुगन्धिता—
स्वतन्त्रता मयी बयार।

पन्द्रह अगस्त—

आज दशहरा अपना आया,
आई अपना आज दिवाली।
नभ की आज घटायें काली,
जीवन बरसा रही यहां है।
विद्युत में सुराङ्गनायें कर,
नर्तन हरसा रहीं यहां हैं।
मघवा, मेघ-गर्जना के मिस,
आजादी का ढोल बजाते।
बन्दी भौंर यश गाते हैं,
दादुर सस्वर वेद सुनाते।
लाली लिये उठी आती हैं,
आज पूर्व में पीत प्रभाली।
आज दशहरा.....
आज कटहरे से खिलाड़ियों,
के पञ्चानन टूट दहाड़ा।
आज निराश व्याध ने अपना,
इस नन्दन से शिविर उखाड़ा।
आज इधर से शोषक-गण ने,
अपना निष्ठुर मुख मोड़ा है।
हमने आज गुलामी का, बन्धन,
शताब्दियों का तोड़ा है।
शत-शत वर्षों की यह कारा;
आज राष्ट्र ने कर दी खाली।
आज दशहरा .....

प्रेम-मिलन में छलक-छलक कर,
मानस एक हुये हैं जाते।
सचमुच आज दिवाली के हैं—
विमल प्रकाश प्रदीप दिखाते।
दलित-दीन श्रमिकों ने अपने,
अपने आज कुटीर सजाये।
आज उभय त्योहार साथ ही,
प्रथम बार इनके घर आये।
विजयालक्ष्मी ने हम सब पर,
आज समान दृष्टि है डाली।
आज दशहरा आया अपना,
आई अपनी आज दिवाली।

शरणार्थिनी—

खोये बिना कौन पाता है ?
यह सागर का ज्वार नयन से,
बार-बार क्यों वह आता है ?

माना आज तुम्हारी दौलत,
आततायियों ने लूटी है ।
फूंका गया गेह अपना है,
जन्म-भूमि अपनी छूटी है ।

किये गये हैं अरी देवकी !
लाल हलाल सामने तेरे ।
माना अट्टहास करते हैं,
पी-पी रुधिर कंस के चेरे ।

माना, तेरी बहू बेटियों की भी,
लूटी गई लाज है ।
इस लज्जा में डूब रहा पर,
वही लुटेरों का समाज है ।

कब पञ्जाब-सिंहनी को यह,
आफत में रोना आता है ?
खोये बिना कौन पाता है ?

धीरज खो मत अरी बढ़ी चल,
अपना दुर्ग सामने ही है ।
देख स्वतन्त्र देश भारत यह,
अपना स्वर्ग सामने ही है ।

इसके हित ही जिसने सुख की,
दुनियां खोई आह नहीं की।
जिसने अपने उर की रानी,
कमला खोई आह नहीं की।

नानक गुरु गोविन्द सिंह के,
जिस पथ पर हम चलते आये,
उसी राह पर ही दृढ़ता से,
जिसके पद हैं बढ़ते आये,

उस हम-राही पर ताना क्यों ?
यदि वह भूल कहीं जाता है।
खोये बिना कौन पाता है ?

बीज स्वरूप गँवा कर जग के,
आश्रयदाता तरु बन जाते।
तरु अपने सब पात झाड़ कर,
कोमल-किसलय पा लहराते।

जल-जल जलने जलधर बनकर,
जग में कितनी निष्ठा पाई।
जीवन--धारा बहा--बहा कर,
गिरि ने अचल--प्रतिष्ठा पाई।

पल मिटकर दिन बनते दिन भी
मिटकर हाय न बन जाते हैं।
आभा-मय तनु खोकर अपना
रत्न रसायन बन जाते हैं।

सकल कलायें खोकर ही शशि,
पनों में रस बरसाता है ।
खोये बिना कौन पाता है ?

नन्दन की भावी को जगने
जाना जब दावा ने दाहा ।
कब किसान ने जाना ओले
पल में कर देंगे सब स्वाहा ।

ज्वाला मुखी कहां फटता है,
जान सका होता यदि कोई,
तो स्वर्णिम-संसार भला क्यों,
वहां बसाता अपना कोई ?

गांधी और जवाहर अपना,
जो अदृष्ट पहिचान न पाये ।
क्या अचरज है जब सीता का
हरण राम भी जान न पाये ।

मक्ति मार्ग पर मानव सजनी;
सब कुछ खोये ही जाता है ।
खोये बिना कौन पाता है ?

— —

कवि के बयालीसवें वर्ष में--

तर रही थी डगमगाती,
तरी कब से भार मेरा,
देखता था सह न पाती।

उठ प्रभञ्जन आरहा था,
कम्प सरि में ला रहा था.
सतत माझी, 'भार भारी'
की पुकार सुना रहा था,

स्वप्न के संसार में थे,
चल रहे साथी संगाती।
तर रही थी ....

पीठ पर ले भार अपना,
एक परमाधार अपना,
लिये मानस में, सभी को,
दे रहा जो प्यार अपना,
कूद कर मंझधार आया,

आह तट से थी सुनाती।
तर रही थीं.....

तर चला थक भी न पाया,
र, तभी यह कौन आया ?
अये ! किसका बाहु है यह
जो किनारे खींच लाया ;
श्रवणमें 'प्रियवत्स !' केवल,
एक मधु-ध्वनि गूंज जाती ।

तर रही थी डग मगाती,
तरी कब से भार मेरा,
देखता था सह न पाती ।

— —

बारह वर्ष की सेवा करने के
पश्चात् एक संस्था से
विदा लेते समय
[१९४८

रे, कैसा संसार—

रे, कैसा संसार, मुझे जो,
समझ नहीं पाया,
किसी ने मुझे न अपनाया,
अयश ही उल्टा भरपाया।

दुख सुख लाभालाभ, जयाजय मानामान न माना,
जग से ठुकराये को जाना मैं ने ही अपनाना।
वरदानों के बदले मुझ पर शाप-भार आया,

किसी ने मुझे न अपनाया,
अयश ही उल्टा भर पाया!
रे, कैसा ....

मैं ने दिन को और रात को भली भांति पहिचाना।
मुझे न भाया कभी जगत का दिन को दीप दिखाना।
रात सजाई तो यह क्रोधित दुर्दिन दिखलाया,

किसी ने मुझे न अपनाया,
अयश ही उल्टा भर पाया,
रे कैसा ....

जल थल को मैं ने सेवायें जानी अर्पित करना।
भाया नहीं सिन्धु में भर दे बादल सञ्चित अपना।
भूमि सींचने पर सागर ने मुझको धमकाया

किसी ने मुझे न अपनाया,
अयश ही उलटा भर पाया।
रे कैसा .....

दूध और पानी को मैंने चाहा स्वच्छ बना दूं।
आत्म शुद्धि हित तपने का भी इनको पाठ पढ़ा दूं।
इस पर इन दोनों में मैंने हा! उफान पाया—

किसी ने मुझे न अपनाया,
अयश ही उलटा भर पाया।
रे कैसा .....

अन्तर में भर नेह प्रेम का मैंने सूत्र उभारा।
अनुपम ज्योति जगा इस जग का अन्धकार सब टारा।
मेरा बस कज्जल सञ्चित कर मुझ पर ढुलकाया,

किसी ने मुझे न अपनाया,
अयश ही उलटा भर पाया।
रे कैसा ....

हां, स्वभाव वश नहीं सुकृत के स्वयं गीत मैं गाता।
निज-गुण-गायक ही इस युग में अपनाया जब जाता।
करनी कर-कर डाल कुयें में साखा सिखलाया,

किसी ने मुझे न अपनाया,
अयश ही उलटा भर पाया।
रे कैसे .. ..

मेरे तट पर आकर इसने कीचड़ पोई अपनी।
तोड़ा बांध लुटाया जीवन है कृतघ्नता कितनी।
थल-थल बह-बहकर इसका ही फिर भी गुण गाया,
किसीने मुझे न अपनाया
अयश ही उलटा भर पाया।
रे कैसा ... .

दिया कुठार उसी ने मैंने की छाया जिस जिस पर।
मांगे कब लूटे मम मृदु फल मार-मार कर पत्थर।
तिस पर व्यङ्ग कि रे, करणी का तूने पाया,
किसी ने मुझे न अपनाया,
अयश ही उलटा भर पाया।
रे कैसा ... .

मैंने सोचा फूल शूल के बीच बनूं मैं पत्ता।
दोनों मिलकर रहे मिटाते मेरी सारी सत्ता।
शूलों ने बेधा, फूलों की मरझाई काया,
किसी ने मुझे न अपनाया,
अयश ही उलटा भर पाया।
रे कैसा ... ..

रवि किरणों से तपा, दली यह उठी मिली अब धूली।
मेरे लिये मिली शङ्कर को अङ्ग भस्म यह भूली।
भला सता पायेगा क्यों अब दुनियावी माया ?
किसी ने मुझे न अपनाया,
अयश ही उलटा भर पाया।
रे कैसा ... ...

[विन्ध्यवाणी फरवरी १९४९ ई०]

जीवन-निर्झर—

(१)

सभी ने की मेरी गति रुद्ध,
किन्तु मैं आगे बढ़ता गया।
बढ़ा मैं पाहन का उर फोड़,
कढ़ा मैं घर से नाता तोड़,
चला जब जीवन आशा छोड़,
मुझे तब किसने रोका नहीं?
सभी ने की मेरी गति रुद्ध,
किन्तु मैं आगे बढ़ता गया।

(२)

पन्थ से मैं नितान्त अनभिज्ञ,
दिशा भी थी मेरी अज्ञात,
चला जाता था मैं निर्भीक,
देखता दिवस न काली रात;
न हो पाई मेरी गति रुद्ध,
और मैं आगे बढ़ता गया।

(३)

कभी झंझा से पाला पड़ा,
कभी रोडों से लड़ना पड़ा,
मार्ग में आये जो-जो विघ्न,
सभी से मुझको भिड़ना पड़ा।
न हो पाई फिर भी गति रुद्ध,
और मैं आगे बढ़ता गया।

(४)

गलाने आये कितने शीत,
जलाने आये कितने ताप,
डराने आये कितने मेघ,
मिट गये सब अपने ही आप।
न कर पाये मेरी गति रुद्ध,
और मैं आगे बढ़ता गया।

(५)

दूर हो कितना ही मम लक्ष्य,
किन्तु होगा तो फिर भी कहीं,
लिये उर में शिव सा संकल्प,
चला जाता था रुकता नहीं।
न हो पाई मेरी गति रुद्ध,
और मैं आगे बढ़ता गया।

[मधुकर अप्रैल, मई १९४६]

शारद-घन

★

स्वतन्त्रता के बाद—

शारद-घन, वह रात नहीं,
यह अपना सुखद प्रभात।

(१)

घिरो-घिरो, तुम प्राची-मुख पीला कर जाओ।
ले अरुणाभ-अबीर भूमि का भाल सजाओ।
घिरो-घिरो तुम शुष्क-पर्ण से उड़-उड़ जाओ।
मन्द-मरुत की मादर-लहर से सजग बनाओ।
चाह यही दृग-पथ पर आये सतत तुम्हारा गात।
शारद-घन! वह रात नहीं यह अपना सुखद प्रभात।

(२)

बीती ऋतु धो गई तुम्हारा हालाहल है।
गर्जन, तड़पन गई स्वच्छ-मन क्यों बेकल है?
कृषक आज चल पड़ा लिये अपना दृढ़ हल है।
श्रमिक आज चल पड़ा लिये अपना सम्बल है।
मार्ग नहीं अवरुद्ध, न बहती अब वह झंझावात।
शारद-घन! वह रात नहीं यह अपना सुखद प्रभात।

(३)

पूरी होगी हिन्द-सिन्धु-सीपों की आशा।
दीन पपीहों की होगी अब शान्त पिपासा।
घिरो-घिरो घन-वृन्द! तुम्हारा स्वागत खासा।
पलट न सकता है कोई अब अपना पांसा।
विजया आई, दीवाली है, बीती है बरसात।
शारद-घन! वह रात नहीं यह अपना सुखद प्रभात॥

— —

मेरे गुरुदेव !

था चरणों से दूर नख द्युति
थी छाई सी रहती।
क्षण-क्षण तारों में वह—
मुख छवि, थी पाई सी रहती।
आज देव वाणी के कितने
स्रोतोद्गम सूखे हैं ?
अह ! कितने मस्तिष्क—
आज संथाशन के भूखे हैं।
विनिमय-रहित अरे ! विद्याधन,
अब वह कहां मिलेगा ?
वह ममत्व, सर्वस्व समर्पण
अब वह कहां मिलेगा ?
वह गति दृढ़ता, वह व्रत-निष्ठा -
कब पायेंगे अब हम ?
आ दुराह पर निज पथ दर्शक -
कब पायेंगे अब हम ?
अंधकार में दीप लिये अब-
कौन चलेगा आगे ?
उर से सत्य अहिंसा हट कर—
मुख आई तुम भागे।
प्रथम--वृष्टि के पङ्किल-पयसा--
मतादान--शासन है।"

अब भी उर में बसा आपका—
वचन बिछा आसन है।
दुर्लभ सन्धि में पड़ यती भी-
आज नाम पर डूबे।
तभी देश के वर्तमान से-
प्राण आपके ऊबे।
अस्त--व्यस्त--व्यवस्था जग की-
वही देश पर छाई।
सब के श्रेय--प्रेय चिन्तन में-
तेरी आह ! विदाई।
देश--दूत बन कर पहुँचे हो--
अमर लोक में गुरुवर !
संस्कृति, संस्कृत--गिरा--गोद --हैं
शून्य, भरो फिर आकर।

——

(५)

हुआ एक भी पक्ष व्यतीत न था,
अनुगामिनी का प्रिय-मार्ग लिया है।
तुम शान्त थे शान्ति थीं वे उतनी,
परमेश ने शान्ति-संयोग दिया है।
सती सांची रही जिसने हमसे-
तुम्हें देखते-देखते छीन लिया है।
आज इन्दुमती का सनेह पुनः-
तुमने प्रिय! आज नवीन किया है।

——

[मधुकर—मार्च १९४२]

स्व० माता कस्तूरबा—

तू रहेगी अमर माई !
विश्व के हर एक कण में-
सुरभि तेरी है समाई ।

खो गई आत्मीयता को,
कौन माना है न प्राणी ?
देश के मुख-कञ्ज पर हा !
पतित है मानों हिमानी ।
बेतार के ही तार के थे—
यंत्र मानों कान सबके—
यह महा—निर्वाण - वार्ता—
साथ ही सबमें समानी ।
लुट-सी नहीं किसकी गई है-
आज अह ! सञ्चित कमाई ।
तू रहेगी अमर माई !

हम न होते क्या नहीं—
चलते हमारे कार होते ?

जन्हु-रविजा के निकलते,
क्या हिमालय से न सोते ?
सिन्धु बहती, विन्ध्य रहता,
किन्तु,मां यदि तू न होती—
हिन्द रहता, हिन्दवासी—
किन्तु हम जागृत न होते ।
वह हमारी कुम्भकर्णी—
जननि ! थी निद्रा तुड़ाई ।
तू रहेगी अमर माई !

प्रकृति के आश्रय बिना—
परमेश से यह जग न ढलता ।
शक्ति यदि होती नहीं तो—
काम साहस से न चलता ।
तरुण भारत के जनक को—
यदि न मां देती सहारा—
कर सके होते भला वे आज--
इतना कौन कहता ?
भूल सकता है भारत—

अम्ब ! यह तेरी जुदाई ।
तू रहेगी अमर माई !

आह ! कितनी बार तूने—
जेल का संकट उठाया ।
बस वहीं पर प्राण अपना—
हा, हमारे हित गंवाया ।
इन विनश्वर-भौतिकों से,
यों अनश्वर प्राप्त करना—
लाड़लों ही को नहीं सब—
आर्य मांओं को सिखाया ।
अश्रु-अर्घ्यों से तुम्हारे—
पूज्य-चरणों की विदाई ।
तू रहेगी अमर माई !

सुभाष—

हे अमर ! कब मरण तेरा ?
अये सुभाष, सुभास टाला—
मातृ-मन्दिर का अन्धेरा ।

सत्य हो यह खबर, फिर भी--
श्रवण सुन सकते नहीं हैं;
श्रवण भी सुनलें, हृदय के—
तार हिल सकते नहीं हैं,
हृदय--तारों को हिला कर—
रो पड़े यदि वेदना भी—
आत्म-दृढ़ विश्वास पर हम—
खो कभी सकते नहीं हैं ।

हिन्द हृदयाकाश में अब—
नित्य तू लेगा बसेरा ।
हे अमर ! कब मरण तेरा ?

अम्ब-आराधन किया था—
साधना—मन्दिर बसा कर,
मातृ-भू की दुर्दशा पर—
या वहाँ आँसू बहा कर,
सिद्ध करने के लिये स्वातंत्र्य-
के शुभ मन्त्र को तुम—

आह अन्तर्धान होकर—
धर्म के उस क्षेत्र जाकर—

कर्म योगारूढ़ थे तुम—
विश्व को कर चकृत चेरा।
हे अमर! कब मरण तेरा?

कर दिये तूने गुलामी के—
कठिन सब पाश ढीले,
भास्कर, बाधा-विघन के—
राहु-केतु अनेक लीले।
देवियाँ ले थाल स्वर्णिम—
अर्चना का साज़ती है।
कस्तूरबा माँ विकल गोदी—
में तुझे लेने लजीले।

कर्त्तव्य-पथ पर मस्त तू—
बढ़ता गया पीछे न हेरा।
हे अमर! कब मरण तेरा।

[पुकार
२६-८-१९४५]

महाप्रयाण—

(१)

गर्व खोगया हाय हमारा !
क्षुब्ध सिन्धु है रुदन बना है—
गङ्गा यमुना का यह कल-कल।
सिहर उठा सारा दिगन्त है—
द्रवित हो उठा आज हिमाचल।
सान्ध्य-गगन में आग लगी कल,
जिसके उड़े अंगारे चञ्चल।
आज रात भर रह टूटते—
बन बन तारे अरे, अमंगल,
कहते सूरज, चांद, कहाँ है—
तेज हमारा, शील हमारा !
गर्व खो गया हाय हमारा

(२)

वह न आर्य भाई भारत का—
है कायर पिशाच ही कोई ?
इसे कौन हिन्दुत्व कहेगा ?
सत्य अहिंसा जिसने खोई।
अपना ही कर खून आत्मा—

जिसने अरे पंक में धोई ।
इस पागलपन पर न देश हो—
फूट-फूट कर दुनियां रोई ।
रे नृशंस, मानवता पर ही—
तूने अपना क्रोध उतारा ।
गर्व खो गया हाय हमारा ।

(३)

जिसके हिय की दोनों फूटीं,
उसे कौन समझा सकता है ?
जब न वही समझा पाया, जो—
जग को पथ दिखला सकता है ।
नव-जीवन का मन्त्र फूंक कर—
गया सचेत बनाने वाला ।
दिव्य दृष्टि देने वाला वह—
कहाँ लक्ष्य तक लाने वाला ?
पारावार तैरता आया—
लेकर भार हमारा सारा ।
गर्व खो गया हाय हमारा !

(४)

व्याध-बाण से मर कर मोहन,
अमर हुये घट-घट बसते हैं ।

ईसा भी चढ़कर शूली पर—
अमर हुये घट-घट बसते हैं।
बापू आप गोलियाँ खाकर—
अमर हुये घट-घट बसते हैं।
वे जीवित मुर्दे हैं अपने—
जो यों कार्य कर करते हैं।
जिस डाली पर चढ़ा उसी पर—
पागल ने कुठार दे मारा।
गर्व खो गया हाय हमारा!

(५)

महा शहीद, अमर तू ही है—
दुनियां नित मरती रहती है।
गीता के गायक की आत्मा—
सदा अछेद्य रहा करती है।
हाँ, हमने खोई है आत्मा—
हम कहते दुनियां कहती है।
पर वह आत्मा हमें छोड़कर—
और कहीं रह भी सकती है?
तट पर लाकर नाव हमारी।
आज उठ गया खेवन हारा।
गर्व खो गया हाय हमारा!

❀

श्रद्धाञ्जलि—

(आजाद भारत के उप-प्रधान मन्त्री स्व० वल्लभ भाई पटेल के प्रति ।)

सरदार गया ! सरदार गया !!

(१)

स्वप्नों ने आकृति पाई थी,
पर पथ पर गिरि थे खाई थी,
गिरि तोड़-तोड़ खाई पाटी,
यह किसकी फिरी दुहाई थी,

दृढ़ता का आज प्रसार गया ।
सरदार गया ! सरदार गया !!

(२)

दक्षिण-तम हित वह रवि प्रताप,
लघु टुकड़ो-टुकड़ों का मिलाप,
सब किंकर्त्तव्य विमूढ़ वहां—
प्रश्नावलि का हल एक आप ।

नेहरू-पथ का संस्कार गया !
सरदार गया ! सरदार गया !!

(३)

जिसमें बापू को था झाँका,
वह वीर गया अपना बाँका,
वह क्षत न अभी भर पाया था—
इस क्षति को है किसने आँका ?

अह, आज राष्ट्र का प्यार गया !
सरदार गया ! सरदार गया !!

(४)

भारत मां का उर आहत है,
अब क्या होगा ? वाणी हत है
वह आस्तिकता आर्यत्व कहां ?
संस्कृति ही तो न दिवंगत है ?

अह, आर्यावर्ताधार गया !
सरदार गया ! सरदार गया !!

(५)

मुरझाया मां का देख शूल,
वह लौह-पुरुष था या कि फूल,

हाँ, विपथ ओर मुड़ते साथी—
पर उठता था इसका त्रिशूल ।

मौनी-साधक अवतार गया !
सरदार गया ! सरदार गया !!

(६)

बापू के मानस की छाया,
वह भारतीयता की काया,
बल, शक्ति, ओज वह स्वाभिमान-
जिसमें अपना सब कुछ पाया ।

वह छोड़ आह मंझधार गया !
सरदार गया ! सरदार गया !!

विन्ध्यवाणी
१ जनवरी १९५१

दीपावली में अन्धकार—

लुट गया धन युग हृदय का।
बीतता हिल मिल रहे दिन—
रात बनती युग-प्रलय का।

मदिर लोचन आज किसके लोचनों को चूमते हैं।
नाज नजरों में हमारी आज किसके झूमते हैं॥
झूलता किसका नहीं है उंगलियों पर बात करना।
आज क्यों दाहक बने वे "तीतले दो बाल कढ़ना!"
बोध साथी! छोड़ मत चित—

ग्रहण कर आश्रय हृदय का।
लुट गया धन युग हृदय का।

आज कल से एक-उर में आह! अचानक याद आई।
सीढ़ियों पर आह किसकी दौड़ उतरन वह चढ़ाई॥
शोक ने दृग बांध तोड़ा, धैर्य की धारा बहाई।
तब हमारी नौ किनारे आह! किसने थी लगाई॥

स्यात वह ही है विधायक—
इस असंभावित—विलय का।
लुट गया.....

झांकती किसकी कपाटों से दिखाती आह, काया ?
गोद में माँ के मचलती आह, किसकी साफ छाया ?
लूट ली किसने हमारी सुकृत—सचित आज माया !
दीप लघु इस गेह का क्यों एक दीपावलि ! न भाया ?

गृह रमा है विकल, किसका—
भर रहा नभ घोष जय का ?
लुट गया.....

दीपावलि
१६-८

दीवाली के दीप—

आज जलकर क्या करोगे ?
वह उठी आंधी कि ढकता—
धूलि से जग जा रहा है ।
जगत को बहरा बना घन—
नाद करता आ रहा है ।
सिन्धु उद्वेलित हुआ है—
डूब जाये यह न भूतल ।
ज्योति की माला लिये यह,
ठहर तुम कैसे सकोगे ?
आज जल कर क्या करोगे ?

वायु-मण्डल में न वह थिरता,
जिसे सहते रहे हो ।
मनुज के धोखे विभा यह,
तुम किसे देने चले हो ।
अस्थियों से अब यहाँ—
जलना मसालें चाहती हैं,
मुँह तभी शशि ने छिपाया—

तुम यहां कैसे टिकोगे ?
आज जल कर क्या करोगे ?

हर सकेंगी अब अंधेरा -
वे मसालें ही यहां पर,
वज्र को कर खाक देंगीं—
शुष्क खालें ही यहां पर ।
टिक न दानवता सकेगी—
आंसुओं की बाढ़ में पड़ ।
स्वच्छ नभ होगा तुम्हीं फिर—
शांत-जग जगमग करोगे ?
आज जलकर क्या करोगे ?

विन्ध्यवासी
८ नवम्बर १९४६

मङ्गल ★ प्रभात

संत प्रवर श्री विनोबा—

स्वागत युग के सन्त तुम्हारा।
आये डगमग चरण बढ़ाकर,
विपदाओं को कण्ठ लगाकर,
आज तुम्हारी पद-रज पाकर—
हुआ प्रफुल्लित हृदय हमारा।
स्वागत युग के सन्त तुम्हारा।

तुम भारत माँ के सपूत हो,
राम राज के अग्रदूत हो,
तुमको पाकर चमक उठा है,
पद-दलितों का भाग्य सितारा।
स्वागत युग के सन्त तुम्हारा।

जहां न मानव की हस्ती थी,
पीड़ित दुखियों की बस्ती थी,
वहीं गाँव के गलियारों से,
फूटी सर्वोदय की धारा।
स्वागत युग के सन्त तुम्हारा।

पावन-गंगा का जल लेकर,
सगर-सुतों को जीवन देकर,
यही कामना है तुम चमको—
राष्ट्र-गगन में बन ध्रुव तारा।
स्वागत युग के सन्त तुम्हारा।

अमृत पत्रिका
२६-६-५२

विनोबाष्टक—

(१)

आते हुये आप जिस ओर से दिखाई दिये—
दृष्टि एक साथ उस ओर मुड़ जाती है।
अञ्जलि में दान-पत्र लिये भूमिपालराजि-
खड़ी-खड़ी राह देखती न अकुलाती है।
पञ्चदश मील जब नापते पदों से नित्य—
काँपती हुई सी भूमि आप चञ्चला आती है।
वामन ने जिस दानशीलता से पाई क्षिति—
वही यहां पाम नवीन गति पाती है।

(२)

वाणी से सदैव माधुरी ज्यों छलकी सी पड़े,
देती दिखलाई मुख दिव्य आभा बिखरी।
पाते ही पदावलम्ब दम्भ हट जाता दूर,
पाप कट जाता जो सुनाई स्वर लहरी।
बसते हैं हृदय-निकेत भावे के हैं दीन-
ये अचेत देश को मिले हैं एक प्रहरी।
मानस में धीरता है, गति में अधीरता है,
कितनी शरीर में है क्रिया-शीलता भरी।

(३)

ग्राम-भगवान की ये भक्ति करते हैं श्याम,
भारतीय-साधना के एक भक्त भाये हैं।
करते हैं परमार्थ का सदैव उपदेश,
अखिलेश के अशेष गुण अपनाये हैं।
भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु नाम को हैं चार,
किन्तु ये स्वरूप से तो एक कहलाये हैं।
गुरुदेव आये, भक्ति आई, भक्त आये आज-
भावे नहीं आये भगवान यहां आये हैं।

(४)

ग्राम-अवलम्ब जन्म से ही लिया केशव ने,
गोकुल से विश्व में बिखेरी थी गुणावली।
अमर बनाने को स्वराज्य राम ने था छोड़ा—
अवध निवास वन्य ग्रामों की शरण ली।
बापू ने सदैव सेवा-ग्राम में निवास किया—
ग्रामों में खिली है भावे उर की कली-कली।
भूमि-दान का पराग चाहते हैं दीन भृङ्ग,
समता की फैले गन्ध ग्रामों में गली-गली।

(५)

ग्राम में हमारा अभिराम काम राज्य श्याम,
यहीं विद्या शासन का आसन है अपना।

भूमि का महान दान-यज्ञ ग्राम-ग्राम में हो-
ग्रामों में अशान्त विश्व को है शान्ति मिलना।
भावे के लिये हैं एक-एक-ग्राम कोटि-तीर्थ,
यहीं तो स्वरूप पा रहा है एक सपना।
करना जो स्थापना हमें हैं राम राज्य की तो,
ग्राम-भगवान का हमें है भक्त बनना।

(६)

देता यहां कोई न सुई की नोक-तुल्य भूमि-
युद्ध बिना की परम्परा को दले आते हैं।
नरों के संहार का न कारण बनेगी भूमि,
भावे इसी भू-कलंक को ही मले आते हैं।
साम्य-सद्भावनायें प्रेम पले आते साथ,
राग, द्वेष, घृणा, भेद भाव छले आते हैं।
बापू ने अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त किया श्याम,
भूमि ले अहिंसा से विनोबा चले आते हैं।

(७)

काष्ठ-लौहकार ही हमारे बड़े कलाकार,
दे सभी औजार इन्हें कुशल बनाना है।
ग्रामों में अथाइयां, अखाड़े, सदुद्योग, धन्धे
चलते रहे हैं इन्हें फिर से चलाना है।
भावे चाहते हैं स्वर्गधाम हों हमारे ग्राम-
यहीं तो आराम वाटिकायें लहराना है।

श्रम-करने को सब को है भूमि देना श्याम.
श्रम-हरने को रङ्ग-भूमियाँ रचाना है।

(८)

अध्ययनशील ब्रह्मचारी बालकों की वृत्ति-
थिर हो सदैव गुरुकुलों में रमी रहे।
गृहस्थों की गृह गुरु-भारता समस्त श्याम'
पुत्र के समर्थ हुये स्कन्ध पै थमी रहे।
जीवन की तीसरे चरणों में साधें वानप्रस्थ,
मानस में सेवा-भावना भी जो जमी रहे।
भावे चाहते हैं आर्य आवें यदि आर्य पथ-
ग्रामों को न कार्य करताओं की कमी रहे।

(९)

एक झांकता है गती से तो नभ से द्वितीय-
भूमि पर आके युग दृष्टि खिल जायेगी।
घिसट रहा है पंगु कार पै सवार कोई,
दोनों की ही गति एक सूत्र सिल जायेगी।
एक मरता है भूख से अजीर्ण से तो अन्य
दोनों में विषमता की नींव हिल जायेगी।
दीन न रहेगा कोई दीनता टिकेगी कहाँ ?
भावे तुम्हें भूमि भावती जो मिल जायेगी।

२४-५-५२
रांठ (हमीरपुर)

★

राष्ट्र-प्राण—

किस, वसुधा का वीर बराबर—
तेरे वीर जवाहर ?

तुझे विरासत में बापू से मिला शान्त अनुशासन;
तेरे लिये करोड़ों उर के बिछे हुये सिंहासन।
तुझे बोस ने अग्रज माना पन्थ प्रदर्शन चाहा,
उर में जलती रही आग पर अनुशासन निर्वाहा।

कौन धरा की स्वरूप रानी—
जन सकती यह नाहर ?
किस वसुधा का वीर बराबर—
तेरे वीर जवाहर ?

अन्तर राष्ट्र-परिस्थिति रहती हस्तामलक तुझे है;
अखिल-विश्व – सेवा करने की रहती ललक तुझे है।
कभी किसी स्थिति में तूने साहस नहीं भुलाया;
कमला की आत्मा को नित ही अपने उर में पाया।

होते मोती, आज लाल पर—
करते लाल निछावर;
किस वसुधा का वीर बराबर—
तेरे वीर जवाहर ?

घर के भाई की महिमा को, जान सके कब घर के;
तेरा अभिनन्दन करते हैं राष्ट्र सकल भूपर के।
हिटलर अपने देश प्रेम पर रहता था मतवाला;
वह मुसोलिनी कहां वचन पर निर्भय मरने वाला।

घर में कई वीर सम्मानित--
चर्चिल घर में बाहर।
किस वसुधा का वीर बराबर--
तेरे वीर जवाहर ?

महासमर ने गतियां विधियां किसकी थी न बदल दीं।
रङ्गरूप किसकी रंगरलियां इसने थी न बदल दी।
लेकिन तू जो जब था उससे आगे ही बढ़ आया;
तू ने अपना नाम न किसकी जिह्वा पर खुदवाया ?

तू घर में सम्मानित जितना--
बाहर अधिक उजागर।
किस वसुधा का वीर बराबर--
तेरे वीर जवाहर ?

तेरे पथ पर शूल बिछाते जब जब रहे विरोधी;
तूने धैर्य शान्ति से उनकी तब तब गति अवरोधी।
चलते-चलते रिपु ने भारी कलहानल भड़काया;
महागुलामी के मुरदे को सुलगा चिता, जलाया।

बिखर गये तूफान आज तू—
आया निखर प्रभाकर ।
किस वसुधा का वीर बराबर--
तेरे वीर जवाहर ?

तू भारत सम्राट रहा है अब तक बिना तिलक का;
आज तिलक करने को तेरा आकुल लोक खलक का।
जमा वेर दिल्ली पर अब तू प्रजातन्त्र का आसन
अपना और प्रेम का देखें कैसा होता शासन ?

एक रूप बन जा अनन्त तू—
हर दिल में जा-जा कर ।
किस वसुधा का वीर बराबर—
तेरे वीर जवाहर ?

राष्ट्र कवि—

भारती के ओ पुनर्निमाण !
तुम जुग-जुग जियो ।

शारदा की मधुर वीणा के मृदुलतर-तार ।
विन्ध्य-भू की देह में तुम प्राण के सञ्चार ।
अनघ, पथ को स्वच्छ करते तुम बढ़े चुपचाप ।

युग-प्रगति के ओ नवीन विधान !
तुम जुग—जुग जियो ।

शील-सत्-सौजन्य के हो तुम सुखद शुभ धाम ।
देव-सरि-पूरित हृदय, मुख लिये स्मित-अभिराम ।
तेरे न कृति-बल चरित बल भी हम प्रगति के पान्थ ।

अर्थ-वाणी के विमल वरदान !
तुम जुग—जुग जियो ।

प्राची-प्रतीची को मिलाने के सतत-उद्योग ।
भू-गगन संयोग के तुम सान्ध्य-स्वर्णिम-योग ।
साकेत के शुभ धाम में है नागरी परिणीत ।

आज हम सब हैं वहीं गतिमान ।
तुम जुग जुग जियो ।

सृजन और विनाश—

(१)

सृजन कठिन-कठिन सखे ! विनाश है सरल ।

एक एक श्रमिकों की रक्त बिन्दु से,
एक एक ईंट को जमा-जमा न क्या ?
खड़े किये गये बड़े-बड़े महल यहां-
और इन्हीं की कतार बन गया शहर ।

भूमि फोड़ लावा के ढेर में छिपा-
नष्ट जिसे करता गिरि एक ही उबल ।

सृजन कठिन-कठिन सखे, विनाश है सरल ॥

(२)

एक एक तिनके को जोड़ जोड़ कर,
तोड़-तोड़ कर निचोड़ कर शरीर को—
रच गया पहाड़ घास का विशाल जो—
हो असंख्य जीवन का जीवनावलम्ब—

खाक में मिला न इसे खाक क्या करे-
एक ही स्फुलिंग और एक ही विपल-

सृजन कठिन कठिन सखे विनाश है सरल ।

(२)

सिन्धु सृजन करता नित, नाश भी कभी,
तट निकट बसा मिला है स्वर्ग भी तभी।
यदि कभी किये गये हैं सैकड़ों सृजन-
क्षम्य एक बार हो बिनाश भूल का।

आग ने सभी को किया छार छार ही,
पद विनाश-देव का तभी मिला अटल।
और कालिमा इसे जाती न क्या निगल

सृजन कठिन-कठिन सखे ! विनाश है सरल ॥

दिन दिन दिव्य प्रकाश मिले तो,
रजनी देती रहे अन्धेरा ।

(१)

अन्धकार में ही तो कितने प्राणी पलते, जुगनू चमके ।
चारु चांदिनी छिटके इसमें तारों भरा नील नभ दमके ।
श्रमिकों की विश्रान्ति, रति, विरति का पोषण है अरे कहां ?
जग के नव-निर्माण बीज का आरोपण है अरे कहां ?
यहीं सुषुप्ति जगाती जग को 'अरे भुला दे मेरा तेरा ।"
दिन-दिन दिव्य प्रकाश मिले तो रजनी देती रहे अन्धेरा ॥

(२)

उठता है जब अरे प्रभंजन सञ्चित निधि वन बिखरा देते ।
उठा अन्धेरा बादल जग को निखरा देते लहरा देते ।
बिछुड़े तिनकों को उठ उठ कर कौन मिला देता है भाई ?
भू के साथ गगन की पावन अरे ! कराता कौन सगाई ?
शान्त वायुमण्डल की तह में एक यही तूफानी घेरा ।
दिन दिन दिव्य प्रकाश मिले तो रजनी देती रहे अन्धेरा ।

(३)

अरे, प्रकाश-पुंज ले कितना ग्रीष्म दिवस भीषण बन जाता ।
वही अनन्त हुआ प्रलयंकर शंकर का ताण्डव ले आता ।

यदि न मृत्यु आती तो जग में जर्ज़र वृद्ध बहाये जाते।
या कि सियार, काक, गीधों के मोहन भोग बनाये जाते।
चढ़ विभीषिका की चोटी पर लेता है विश्राम बसेरा।
दिन-दिन दिव्य प्रकाश मिले तो रजनी देती रहे अन्धेरा॥

(४)

कुशल विधाता की रचना में कोई सुन्दर है न असुन्दर।
महानाश का सिद्ध देव यह कितना सुन्दर बना समुन्दर।
क्रान्ति लिये ही आकर काली स्नेहमयी माता बन जाती।
नीलकण्ठ के भाल बसी यह कब से चन्द्रकला सरसाती।
कहीं सुधा जो मिला, मूल में वहीं गया विष ही है गेरा।
दिन-दिन दिव्य प्रकाश मिले तो रजनी देती रहे अन्धेरा॥

(५)

काला ही न, दिठौना जग की नजरों से सौन्दर्य बचाता?
काली में दीवाली जगती जिससे जग जगमग बन जाता।
काले घोर विपिन पर अपने राज्य विशाल गये ठुकराये।
यहां मधुपुरी छोड़ सदा से काले सागर गये बसाये।
उर में काला ही बसने पर होगा विमल विभा का डेरा।
दिन-दिन दिव्य प्रकाश मिले तो रजनी देती रहे अन्धेरा॥

बीमा एजेन्ट—

प्रिय करालें आप बीमा।

(१)

अहं, अधिक है आपका ही लाभ सेवा-वृत्ति वालो।
मौत के पश्चात गृहिणी की दशा पर दृष्टि डालो।
आपको क्या, आपके घर की हमें चिन्ता बड़ी है,
क्यों न भावी जिन्दगी को बचत कर सुन्दर बनालो।
राय मत लेना किसी से यह जगत डाही बड़ा है।
वही बढ़ सकता यहां जो आप निज पैरों खड़ा है।
आप जुग-जुग तक जियें हम सर्वदा यह चाहते हैं,
किन्तु लेकर जन्म सब का मरण से पाला पड़ा है।

बाल बच्चों की फिकर के—
कब्ज को लगता इनीमा।
प्रिय, करालें आप बीमा।

(२)

कौन लीडर है यहां जो कम्पनी का है न हामी।
पन्त, पट्टाभी सभी ने है यहां पतवार थामी।
छोड़ कर गुमराह बापू को सभी नेता जनों में।
इस सुपथ पर खींच लाने की कमी होती न खामो।

आपका रुपया जमा हो दो गुना हो जायगा।
इस सरलता से न फिर क्यों जोड़ कोई पायगा?
शीघ्र ही सुरलोक पायें आप, घर वाले मनायें।
सब की दुआ से सुगम वैतरणी-तरणा हो जायगा।

आप हों झट पास, जाकर-
स्वर्ग का देखें सिनीमा।
प्रिय करालें आप बीमा।

(३)

छोड़िये यह कथन जग के जिन्दगी से बद्ध नाते।
मरण पर भी प्रेम के सब सूत्र गुम्फित ही दिखाते।
मिलतीं तभी तो विश्व से सम्बन्धियों को सान्त्वनायें।
मृतक की सम्पत्ति के अधिकार कुछ ही व्यक्ति पाते।
निज डबल बीमा कराकर भूलकर साथी संगाती,
देखिये, दस लाख की लाला गये हैं छोड़ थाती।
चैन की वंशी बजाती बाल विधवा आज उनकी।
स्वप्न में भी याद लाला की उसे अब है न आती।

तो, करालें, डाक्टरी फिर-
अब न बोलें बोल धीमा।
प्रिय, करालें आप बीमा।

किसान—

टूटी पर्णी-कटीर बिछी-
शय्या पयाल की ही भूपर।
शाक कठौते भरे कोदे के-
रोट, पिया पानी घट भर।
लाठी, हल, दो बैल तुम्हारे-
हैं साधन हे विश्वम्भर!
फटे चीथड़ों में तन ढ़ककर-
गाते रहते दिन-दिन भर।
कीट पतंगे भी कर लेते-
अपने हित उद्यम साधन।
जग में यदि कोई जीवन है-
तो किसान तेरा जीवन।
पर उपकारों में ही सब कुछ
तुम्हीं जानते हो खोना।
सदा दूसरों के दुख में है-
तुमने ही जाना रोना।
अहसानों से दबा लिया है-
जगती का कौना-कोना।
लोहा तेरा मान तुझे देती-
वसुन्धरा है सोना।
तुझ पर देशोत्थान पतन का-
होता रहता है नत्तीन।

जग में यदि कोई जीवन है-
तो किसान तेरा जीवन।
टिड्डी के दल के दल चढ़ते-
तेरी ही छाती पर तो।
अनावृष्टि की आग धधकती
तेरी ही छाती पर तो।
अति वर्षण मशीनगन चलती-
तेरी ही छाती पर तो।
ओले के गोले पड़ते हैं-
तेरी ही छाती पर तो।
तेरी ही छाती देती है-
सभी ईतियों को आसन।
जग में यदि कोई जीवन है-
तो किसान तेरा जीवन।
नीचे भू ऊपर तरु छाया-
या आकास सुहाता।
निज परिवार समेत हार में-
तू प्रसन्न दिखलाता।
खेतों को जब तू पाता है-
हरा भरा लहराता।
मानों बटा हुआ गेह में-
तू आनन्द मनाता।
साधु असाधु रंक राजा का
तू ही करता है पालन।

जग में यदि कोई जीवन है-
तो किसान तेरा जीवन ।

पके धान्य का जब समेटते—
हो तुम दाना दाना ।
तब तेरे आनन्द सिन्धु का—
रहता नहीं ठिकाना ।

साहु, जमीदारों के यम से—
चढ़ आते तब साना ।
तेरी इस गाढ़ी कमाई पर—
कैसी शान जमाना ।

क्षमा मूर्ति तू मौन, किये—
जाता है सब कुछ ही अर्पण ।
जग में यदि कोई जीवन है—
तो किसान तेरा जीवन ।'

वर्षा हो या शीत धूप पर—
तू गतिशील सतत रहता ।
सदा लोक कल्याण कामना-
लिये साधना रत रहता ।

झेल स्वयं अभिशाप विश्व-
हित तू वरदान-निरत रहता ।
अहं भाव का लेश नहीं पर-
तेरे हृदयङ्गत रहता ।

आती जाती ऋतुयें सारी—
करती तेरा अभिनन्दन ।
जग में यदि कोई जीवन है—
तो किसान तेरा जीवन ।

— —

श्रमिके—

प्रियतम तक पथ जोड़ रही है।
दिन में तुझे धूप पिघलाती
निशा-हिमानी ठिठुरा जाती।
जेठी-लपटें, शिशिर-समीरण,
मघा-मेह से नेह बढ़ाती।
कंकड़-कण्टक-मयी भूमि पर,
सोती रहती अरी नींद भर;
विषखापर, बीछी भुजंग हैं-
योगिनि! तेरे सखा सँगाती।
जग को चुन चुन देने को-
तू चान्द्रायण ओढ़ रही है।
प्रियतम तक पथ जोड़ रही है।

खोद, तोड़ती, ढोने लगती—
सुनती जब जेसी ललकारें।
जादूगरनी! वहीं दिखाई—
देती रहती जहां पुकारें।
कभी किसी से 'ना' कह जाना—
तूने जीवन में कब जाना।
तू सारा जग तार रही है—
जग के कीट तुझे क्या तारें?
ले न सका तेरी सुधि कोई—

तू किससे मुख मोड़ रही है ?
प्रियतम तक पथ जोड़ रही है

जग कहता 'कितनी निष्ठुर तू —
वसुधा का उर-चीर रही है ।
गिरि वर करती चूर चूर तू —
भू पर पीट लीकर रही है ।"
तू कहती है - 'जग जड़ ही यों-
जड़ की बातें कह सकता है ।
मेरे दिल में चेतन दुनियां-
ही सदैव भर पीर रही है ।"
अरी, हथौड़े की चोटों से —
पत्थर या दिल तोड़ रही है ?
प्रियतम तक पथ जोड़ रही है ।

तेरे इस काले चमड़े में —
गंगाजल शशि-सार भरा है ।
बड़े बड़े पेटों का तेरे —
पञ्जर पर ही भार धरा है ।
तेरे दिये मसाले ने ही —
महलों की है नींव जमाई ।
तेरे हाथों ही यह उनका —
नन्दन-उपवन हरा-भरा है ।
माया के मुख में अपनी तू-

काया आप निचोड़ रही है ।
प्रियतम तक पथ जोड़ रही है ।

भेद भरे मसजिद-मन्दिर ये—
तेरे प्रभु को कब भायेंगे ?
ईसा, खुदा, राम तेरे दिल—
एक बने बसने आयेंगे ।
सत्यं शिवं, सुन्दरं भजती—
तू जग का निर्माण किये जा,
जगन्नाथ निज भार बँटाने—
बाले को ही अपनायेंगे ।
सेवाओं से तू शरीर की—
लगा तभी तो होड़ रही है ।
प्रियतम तक पथ जोड़ रही है ।

तू अपने मानस के मोती—
नयन-सीपियों में सेती है ।
अपनी नीलम की प्रतिमा पर--
उन्हें जिस समय जड़ देती है ।
तब सजीव करुणा की देवी—
सजी हुई तू दिखलाती है ।
कभी न होती क्रुद्ध, हुई तो—

काली की छवि धर लेती है।
क्यों कोई स्वाहा हो जाये—
आहें दिल पर छोड़ रही है।
प्रियतम तक पथ जोड़ रही है।

'मधुकर' नवम्बर सन् १९४६

बुन्देलखण्ड—

(१)

शान्त शील-शालीन, शौर्य के मद में छाका।
समर-खिलाड़ी-वीर बुन्देला बढ़-बढ़ हांका।
मधुकर, वीर वृसिंह इन्द्र ने सुयश पताका-
फहराई थी यहां किया निज जागृत साका।

गुण-ग्राहकता यहां के-
अब भी प्रकट नृपाल की।
कन्धा दे लाये भवन-
जो भूषण की पालकी।

(२)

खचित यहां की दीवालों पर चित्रकला है।
खजुराहे में मूर्तिमान निज वास्तुकला है।
गुल्ला* से थी सफल यहां की नृत्यकला है।
ख्यात कुदौ❀ की गज-मद-मोचन वाद्यकला है।

---

*दतिया नरेश के यहां के तत्कालीन नर्तक। ❀एक प्रसिद्ध पखावजी जिन्होंने गजपर्ण बजाकर एक मदमस्त हाथी को ठीक किया था।

स्वर्ग यहां का देवगढ़-
हर लेता सब शोक है।
तान-सेन से बना यह-
गन्धर्वों का लोक है।

(३)

घाती इसका शीर्ष सोन है सखी सयानी।
चम्बल चरण पखार रही शुचि-श्रद्धा-सानी।
कृष्ण-भक्ति का यहां चढ़ातो यमुना-पानी।
शिव के गुण गा रही यहां नर्मदा भवानी।

जामनेर जमडार के-
सङ्गम पर बाणी मिली।
कवि का कुण्डेश्वर यहीं-
है प्रयाग पुण्यस्थली।

(४)

पाषाणों में भी जीवन की ज्योति जगाती।
पद्माकर के केन गीत गाती लहराती।
तान ईश्वरी जगनक की रग-रग फड़काती।
कालो कवि की यहीं पताका है फहराती।

कल अजमेरी व्यास के-
सुने मधुरतर स्वर यहाँ।

भव्य--भारती--भवन यह-
कवियों का आकर यहाँ।

(५)

यमुनातट ने जिसे मनोरम सुखद बनाया।
थी जिस पर वाल्मीकि व्यास की शीतल छाया।
वाणी का वरदान सदा से जिसने पाया।
जिसके यश को काल पी न पाया थक आया।

बसा ऐतिहासिक यहीं-
वह प्राचीन प्रधान पुर।
कथित कालपी की कथा
मिसरी से भी है मधुर।

(६)

यहीं हुये थे मान और कविवर खुमान थे।
चरखारी के मूर्तिमान जो स्वाभिमान थे।
यहीं गदाधर दतिया के गौरव गुमान थे।
करण यहीं, पजनेश यहीं, ठाकुर महान थे।

पन्ना ने हीरे नहीं—
हमें लाल भी ला दिये।
तुलसी केशव ने कई
कवि कुल यहां बसा दिये।

(७)

सहजा ने चैतन्य जगाया चेतन-मन में ।
यहीं रहे रत-विरत मुनीश्वर तप साधन में ।
मिलते क्या वे नहीं आज भी कामद-वन में ।
भक्तों को भगवान मिले थे यहीं विपिन में ।

चित्रकूट में त्राण था-
पाया राम रहीम ने ।
माना यहीं असीम सुख-
सीमित हुये असीम ने ।

'विन्ध्य भूमि' जून सन् १९४६

महोबा—

(१)

असि-लेखनी से जो लिखा गया रक्त से,
सो था कवित्व यहां गया बांचा ।
निज देश से प्रेम गँभीरता का यही-
तो ढला शूरता का गया ढांचा ।
यह वीर वसुन्धरा है वही तो, जहां-
था महाभारत दूसरा मांचा ।
दिहली के अधीश्वर के दल को-
दल ऊदल का जहाँ बेंदुला नांचा ।

(२)

भर देती रगों-रगों में बल जो-
वह रागिनी मोद-प्रदाता यहां की ।
नित विद्युत सी चमकी खटकी-
तलवार थी दीन की त्राता यहां की ।
अहो ! नारी स्वदेश से प्राण के नाथ-
का, जोड़ती थी घना नाता यहां की ।
रण भेजती लाड़लों को बल दे
वह देवलदे-सम माता यहां की ।

(३)

वर बीजा तड़ाग का बाँध चन्देलिया-
काल के कौशल को दिखलाता ।

नित आगतों का कर स्वागत 'कीरत'
कीर्ति की थाती लिये लहराता ।
अब भी यहाँ वीर न पा सका जाड़ तो-
बन्धु ही पै निज-जोर जनाता ।
अहो पान महोबिया आज भी देश-
के लाड़लों के मुख लालिमा लाता ।

——

मङ्गल - प्रभात

– १ –

राग रङ्ग में समस्त–
व्यस्त था विहङ्ग - वृन्द
देखे बनता था वल्लियों–
के लाश का प्रकार

भृङ्ग तो लगाये रहा–
घात ही समीर 'श्याम'
दल-द्वार खोल लगा,
लूटने कली का सार।

लगातार चार पहरों–
से द्वन्द्व - युद्ध कर—
पराभूत हो पाताल,
में छिपा था अन्धकार।

मुक्ता हार बाती–
प्रकाश पै अपार—
ऊषा, आरती उतारती थी,
प्राची लिये स्वर्ण थार।

– २ –

मन्द - मन्द मलय–
समीर चौंर ढारता था—
भौंर भाट 'श्याम' छन्द-
गान रचने लगे ।

पीतारुण – वसन –
दिगन्त में उड़ाते हुए,
प्राची अङ्गना के सङ्ग—
इन्द्र नचने लगे ।

आता था दिनेश, सभी–
स्वागतार्थ सज्जित थे,
भेंट लिये भू के तरु—
हस्त हिलने लगे ।

जोश में खुशी के–
जो जलेश ने लुटाया कोष,
दुनियां के लोग उसे—
ओस कहने लगे ।

❀ श्रद्धा के फूल ❀

★

बुन्देलखण्ड ने हिन्दी साहित्य के निर्माण एवं विकास में जो योग-दान दिया है वह हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों से छिपा हुआ नहीं है। यह वीर-भूमि साहित्यिकों एवं कलाकारों की जननी है। अपनी प्राकृतिक सुषमा एवं सौन्दर्य के कारण वह अपने योग्य कलाकारों का लालन-पालन कर सकी है और उन कलाकारों ने भी अपनी प्रखर-प्रतिभा से साहित्य के प्रत्येक अंग को देदीप्यमान करने में कोई प्रयत्न शेष नहीं रखा। वीरगाथाकाल से लेकर आधुनिक काल तक कविता के क्षेत्र पर यहां के सरस्वती के वरद पुत्रों ने जो पीयूष वर्षा की है उससे करोड़ों सतप्त हृदयों तथा आत्माओं को शांति प्राप्त हुई है और उनके उन वरदानों से हिन्दी कविता तो अमर हो गई है। इन्हीं में से एक 'मंगल-प्रभात' के प्रणेता हमारे यशस्वी कवि श्रद्धेय बादल जी हैं।

आज की साहित्यिक गुट-बन्दी, प्रकाशकों की अर्थ-लाभ की प्रवृत्ति और आर्थिक परिस्थितियों के कारण बहुत से ऐसे कलाकार प्रकाश में नहीं आ पा रहे हैं। पूज्य बादल जी सरस्वती के मन्दिर में लगभग २५ वर्षों से अनवरत रूप से साहित्य-साधना कर रहे हैं। उनका एक काव्य-संग्रह 'शिशु' सन् १९३९ में प्रकाशित हो चुका है। उनके अनेक उपयोगी लेख यत्र-तत्र, पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं; परन्तु उनकी इस प्रतिभा का व्यापक-दर्शन हमारा हिन्दी जगत् उपर्युक्त कारण से नहीं कर सका। 'मंगल-प्रभात' में कवि ने स्वयं एक स्थान पर लिखा है:—

'रे कैसा संसार मुझे जो
समझ नहीं पाया।'

❋ श्रद्धा के फूल ❋

★

बुन्देलखण्ड ने हिन्दी साहित्य के निर्माण एवं विकास में जो योग-दान दिया है वह हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों से छिपा हुआ नहीं है। यह वीर-भूमि साहित्यिकों एवं कलाकारों की जननी है। अपनी प्राकृतिक सुषमा एवं सौन्दर्य के कारण वह अपने योग्य कलाकारों का लालन-पालन कर सकी है और उन कलाकारों ने भी अपनी प्रखर-प्रतिभा से साहित्य के प्रत्येक अंग को देदीप्यमान करने में कोई प्रयत्न शेष नहीं रखा। वीरगाथाकाल से लेकर आधुनिक काल तक कविता के क्षेत्र पर यहां के सरस्वती के वरद पुत्रों ने जो पीयूष वर्षा की है उससे करोड़ों सन्तप्त हृदयों तथा आत्माओं को शांति प्राप्त हुई है और उनके उन वरदानों से हिन्दी कविता तो अमर हो गई है। इन्हीं में से एक 'मंगल-प्रभात' के प्रणेता हमारे यशस्वी कवि श्रद्धेय बादल जी हैं।

आज की साहित्यिक गुट-बन्दी, प्रकाशकों की अर्थ-लाभ की प्रवृत्ति और आर्थिक परिस्थितियों के कारण बहुत से ऐसे कलाकार प्रकाश में नहीं आ पा रहे हैं। पूज्य बादल जो सरस्वती के मन्दिर में लगभग २५ वर्षों से अनवरत रूप से साहित्य-साधना कर रहे हैं। उनका एक काव्य-संग्रह 'शिशु' सन् १९३९ में प्रकाशित हो चुका है। उनके अनेक उपयोगी लेख यत्र-तत्र, पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं; परन्तु उनकी इस प्रतिभा का व्यापक-दर्शन हमारा हिन्दी जगत् उपर्युक्त कारण से नहीं कर सका। 'मंगल-प्रभात' में कवि ने स्वयं एक स्थान पर लिखा है:—

'रे कैसा संसार मुझे जो
समझ नहीं पाया।'

जब कि कवि ने:—

"अन्तर में भर नेह प्रेम का मैंने सूत्र उभारा।
अनुपम ज्योति जगा इस जग का अंधकार सब टारा॥"

फिर भी संसार ने—"मेरा बस कज्जल संचित कर मुझ पर ढलकाया।" उनका यह कटुसत्य कितने कलाकारों की प्रतिभा के लिये लागू होता है। यदि हिन्दी जगत् अपने इन कलाकारों की प्रच्छन्न प्रतिभा को प्रकाश में लाने का सद्प्रयत्न कर सके तो यह साहित्य की और समाज की महान् सेवा होगी।

बादल जी की कविता का सबसे बड़ा गुण है प्रसाद। सुन्दर से सुन्दर भाव को वे बड़े अनूठे और सरल ढंग से कह जाते हैं।

"यदि उर्वर में धान्य उगाया तो तुमने है क्या कर पाया?
यदि पुर में ही गेह बनाया, तो तुमने है क्या कर पाया?
ऊसर और मरुस्थल पर अब, नन्दन बन लहराना होगा।
खण्डहरों पर महल खड़े कर, दिव्य प्रकाश जगाना होगा।"

इसके अतिरिक्त उनकी कविता में ओज, माधुर्य आदि काव्योचित गुणों का समावेश तो है ही, उनमें जो एक और विशेषता है वह है प्राचीनता और नवीनता का सुन्दर समन्वय। उनकी लेखनी विविध आकर्षक एवं स्वास्थ्य सुधर विषयों पर चली है। और उन विषयों में उनकी प्रौढ़ प्रतिभा का परिष्कृत एवं समुज्ज्वल रूप परिलक्षित है। उनकी भाषा भावों के अनुकूल है। उनके कोई कोई गीत तो काव्य की दृष्टि से बड़े ही उच्च कोटि के हैं। उनकी 'वाणी वन्दन' कविता माता-सरस्वती के चरणों में उनके उपासकों द्वारा चढ़ाये गये पुष्पों में से एक सुरभित पुष्प है।

निज निधि सार दे विसार दे मां, दोष मेरे,
भाल पै पसार दे कृपा का हाथ शारदे।

बादल जी के कवि-हृदय की विशद विवेचना स्थानाभाव के कारण यहां सम्भव नहीं है। उनका हृदय कितना भावुक और उदार है इसे वही जानता है जो उनके एक बार भी सम्पर्क में आया हो। मेरे ऊपर तो उनकी असीम कृपा सदैव से रही है, और उनका इसी कृपा के प्रसाद से मैंने इन पंक्तियों के लिखने का दुस्साहस किया है।

मेरी तो ईश्वर से विनय है कि उनका यह 'मङ्गल-प्रभात' हिन्दी साहित्य-जगत के लिए शुभ-विहान सिद्ध हो जिससे उसे मङ्गलमयी प्रेरणा एव स्फूर्ति प्राप्त हो सके।

कवि के शब्दों मे मेरी शुभकामना है 'मङ्गल-प्रभात' के लिए कि—

'भारती पुकारती हमारी भारती आ अम्ब,
भारतीय भू पर तेरी आरती उतारी जाय।'

सदाशिव निवास
राठ।
माघ, गणेश चतुर्थी,
२०१०वि०

गनेशीलाल बुधौलिया
एम०ए०,साहित्यरत्न,
मंत्री, साहित्य-परिषद्
राठ (हमीरपुर)

कुछ सम्मतियां

'मङ्गल प्रभात' की रचनायें सामयिक और उत्साह देने वाली हैं। शैली मनोहर, भाषा प्राञ्जल और कविता में ओज है। यह इस युग की भारत भारती है।

रीवां
२७--१--५४

लालाराम बाजपेई,
गृह मन्त्री--विन्ध्य प्रदेश।

काव्य शक्ति परमेश्वर की विशेष देन है। जिसे यह वरदान प्राप्त हो उसे चाहिये कि अपनी रचनाओं द्वारा मानव जीवन को शान्ति प्रदान करे। सुन्दर साहित्य सृजन से परम प्रधान परमात्मा की महिमा होती है। क्योंकि कवि उसी सर्व-शक्तिमान सृजनहार की प्रेरणा पाकर उसकी सुषमा का अपनी निराली कला में प्रदर्शन करता है। इस 'मङ्गल प्रभात' में जिस ढङ्ग से बादल बरसे हैं, उसे देख कर तो यही आशा की जाती है कि उनके जीवन दिवस की पावस में इस विह्वल-विश्व का कोई प्राणी प्यासा न रहेगा। मेरी मङ्गल कामनायें आशीर्वाद के साथ अर्पित हैं।

केम्पः —
राठ (बुन्देलखण्ड)
२८--७--५१

योगी धर्मध्रुव,
पृथ्वी-परिव्राजक व विश्वशांति-प्रचारक

मङ्गलप्रभातीय पद्यलेखस्य राष्ट्र कवित्वमभिव्यज्यते।
एवं विधा लेखका दीर्घायुषः स्युरिति कामये॥

कस्तूरबा सं०वि०
राठ (हमीरपुर)

आचार्य कमलाकान्त त्रिपाठी
दर्शनशास्त्री, प्रधानाध्यापकः

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
९	३	मायें	मांयें
१८	४	वभव	वैभव
२९	८	जिसके	जिसको
३०	४-१५	तू क्यों···	निज ·· तू क्यों
,,	,,	शिश	शिशु
३७	८	वक्ष	वृक्ष
३८	१२	हरे	हरें
४७	६	हरसा	हरषा
५०	५	ासह	सिंह
,,	२१	हाय न	हायन
५१	१६	मक्ति	मुक्ति
,,	१८	खाये	खोये
५६	१५	मरझाई	मुरझाई
,,	१९	तपा	तपी
५९	१८	घन-वृक्ष	घन-वृद्ध
६०	२२	पयसा	पय सा
६१	४	दुरभि सन्धि	दुरभिसन्धि
६२	१३	श्रति	श्रुति
६३	१०	सनते	सुनते
,,	११	जावन	जीवन
६६	अन्तिम	है	है न
७३	१०	बह	वह

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
,,	१२	किकत्तव्य	किकर्त्तव्य
७६	८	छड़	छोड़
८२	६	कैपती	कांपती
८५	९	आवें	आएँ
८७	१०	बदल दी।	कुचल दीं।
९०	११	रच गया	रचा गया
९७	२१	बटा	बेटा
१००	६	ककड़	कंकड़
,,	९	तरे	तेरे
१०५	५	धाती	धोती
१०९	३	जाड़	जोड़